Chap-5

पंचम अध्याय

नयी कविता के प्रमुख कवि तथा उनका ग्राम्य–वर्णन

- सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
- गजानन माधव मुक्तिबोध
- नागार्जुन (वैद्यनाथ मिश्र)
- जगदीश गुप्त
- केदारनाथ अग्रवाल
- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
- भवानी प्रसाद मिश्र
- शमशेर बहादुर सिंह
- रघुवीर सहाय
- नरेश मेहता
- धर्मवीर भारती
- कुँवरनारायण
- भारतभूषण अग्रवाल

पंचम अध्याय

नयी कविता के प्रमुख कवि तथा उनका ग्राम्य-वर्णन

नयी कविता के द्वारा हिन्दी काव्य को वह व्यक्तित्व सम्पन्न दृष्टि मिली है, जो ईमानदारी के साथ यथार्थ जीवन को उसके सहज रूप से गहराई से देखने की प्रेरणा देती है। नये कवि की दृष्टि स्वभावतः सार्वभौमिक है। देश, भाषा, धर्म तथा जातीयता के विभेद उसके लिए महत्वपूर्ण नहीं है और न उसके आधार पर वह अनुप्रेरित होता है। अपने देश, अपनी भाषा और अपने साहित्य के प्रति सम्मान एवं स्नेह की भावना उसे मनुष्य मात्र की एकता और साहित्य मात्र की अखण्डता की प्रतीति से विरत नहीं करती। नयी कविता के कवियों ने ग्राम्य–जीवन तथा वहाँ के प्राकृतिक परिवेश को समग्रता में तथा पूरी जीवंतता के साथ चित्रित किया है। नयी कविता के प्रमुख रचनाकारों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, कुँवरनारायण, जगदीश गुप्त, भारतभूषण अग्रवाल, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र आदि हैं। जिनमें कुछ प्रमुख कवियों का ग्राम्य–वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' :

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' नयी कविता के एक प्रमुख कवि हैं। उनके द्वारा सृजित काव्य को जाने बिना नयी कविता के प्रारम्भ, विकास एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन असम्भव है। ये नयी कविता के प्रवर्तक कवि हैं। अज्ञेय ने प्रभूत मात्रा में काव्य–सृजन किया है वह उनकी अद्वितीय प्रतिभा और अशेष सर्जनात्मक क्षमता का सूचक है। 'भग्नदूत' 'चिन्ता' 'इत्यलम्' 'हरी घास पर क्षण भर', बावरा अहेरी, 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, 'ऑगन के पार द्वार', असाध्य वीणा, 'सागर मुद्रा', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' आदि उनके काव्य–संग्रह हैं। अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के प्रति विशेष लगाव के दर्शन होते हैं। उनके अधिकांश प्रिय प्रतीक भी प्राकृतिक हैं जैसे मछली, सागर, नदी तट, चिड़िया चाँदनी, इन्द्र धनुष, साँझ आदि।

अज्ञेय के काव्य की एक उल्लेखनीय विशेषता अपने परिवेश के प्रति जागरूकता है। आधुनिक बोध के सहारे वह लोक से प्रतिबद्ध हैं। लोक संपृक्ति की यह भावना अज्ञेय के काव्य में अनेक स्तरों पर उद्‌घाटित हुई है। राष्ट्रीयता, जीवन के कटु–तिक्त प्रसंग सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। ग्राम्य–जीवन तथा प्रकृति का सुन्दर चित्र अज्ञेय ने अपनी 'जन्म–दिवस' शीर्षक कविता में खींचा है–

"अमुखर नारियाँ, धूल–भरे शिशु, खग,
ओस–नमें फूल, गन्ध मिट्टी पर पहले असाढ़ के अयाने वारि बिन्दु की,
कोटरों से झाँकती गिलहरी,
स्तब्ध, लय बद्ध भौंरा टँका–सा अधर में,
चाँदनी से बसा हुआ कुहरा,
पीली धूप शारदीय प्रात की
बाजरे के खेतों को फलाँगती डार हिरनों की बरसात में–
नत हूँ मैं सब के समक्ष, बार–बार मैं विनीत स्वर
ऋण–स्वीकारी हूँ– विनत हूँ।"[1]

अमुखर नारियों, धूल भरे शिशु, ओस–नमें फूल, हिरनों की डार और प्रकृति एवं ग्रामीण जीवन के कण–कण से अज्ञेय को गहरा लगाव है।

'काँगड़े की छोरियॉ, शीर्षक कविता में अज्ञेय ने ग्राम्यॉंचलीय प्रकृति वहाँ के खेत–खलिहान, फसलों तथा लोक जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। काव्य–पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"काँगड़े की छोरियाँ कुछ भोरियाँ सब गोरियाँ
लाला जी, जेवर बनवा दो खाली करो तिजोरियाँ!
काँगड़े की छोरियाँ!
ज्वार–मका की क्यारियाँ हरियाँ भरियाँ प्यारियाँ
धन–खेतों में प्रहर हवा की सुना रही है लोरियाँ–
काँगड़े की छोरियाँ!
पुतलियाँ चंचल कालियाँ कानों झुमके–बालियाँ
हम चौड़े में खड़े लुट गये बन न हमसे चोरियाँ–
काँगड़े की छोरियाँ!
काँगड़े की छोरियाँ कुछ भोरियाँ सब गोरियाँ"[1]

---

1. अज्ञेय :सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ० 210 (काव्य–संकलन– इत्यलम्)

अज्ञेय की व्यष्टि चेतना के विषय में रामकमल राय का कहना है कि "यही है आदर्श! समष्टि जो व्यष्टि को घेरे, धरे, सहे, धारण करे, भरे, लहरों से सहलाये, दुलराये, झुमाये–झुलाये और फिर भी निर्बन्ध, मुक्त रखे, मुक्त करे। धरती पर इसी सम्बन्ध की अवतारणा के लिए अज्ञेय का अन्तर आकुल है। इसी भूमि पर वे विचरण करना चाहते हैं।"[2] अज्ञेय की दृष्टि में व्यष्टि और समष्टि दोनों ही महवपूर्ण हैं। व्यष्टि भी समष्टि के सागर को क्या नहीं देता है?

"हमने क्या सागर को इतना कुछ नहीं दिया?
भोर, साँझ, सूरज–चाँद के उदय–अस्त
शुक्र तारे की थिर और स्वाती की कँपती जगमगाहट,
दूर की बिजली की चदरीली चाँदनी,
उमस, उदासियाँ, धुन्ध,

× × × × × ×

लम्बी यात्रा में
गाँव–घर की यादें
सरसों का फूलना
हिरनों की कूद, छिन चपल छिन अधर में टँकी–सी,
चीलों की उड़ान, चिरौटों–कौओं की ढिठाइयाँ,
सारसों की ध्यान मुद्रा, बदलाए ताल के सीसे पर अँकी सी
वन तुलसी की तीखी गन्ध
ताजे लीपे आँगनों में गोयठों पर
देर तक गरमाये गये दूध की धुईंली बास,
जेठ की गोधूली की घुटन में कोयल की कूक,
मेड़ों पर चली जाती छायाएँ,
खेतों से लौटती, भटकती हुयी तानें
गोचर में खंजनों की दौड़,
पीपल–तले छोटे दिवले की
मनौती–सी ही डरी–सहमी लौ
ये सब भी क्या हमने नहीं दी?"[3]

---

1. अज्ञेय :सदानीरा; सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, वही, पृ० 257
(काव्य संकलन–बावरा अहेरी)

2. रामकमल राय, अज्ञेय : सृजन की समग्रता, पृ० 63

3. अज्ञेय : सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ० 275–76
(काव्य संकलन–सागर मुद्रा)

व्यष्टि का समष्टि को यह दान छोटा नहीं है। यह अज्ञेय के व्यक्तित्व की, उनके व्यष्टि की विराट अनुभूतियों की पूँजी है। ग्राम्य–संवेदना की कितनी गहरी अनुभूति है उनकी इस कविता में। कम ही कवियों को 'ताजे लीपे आँगनों में गोयठों पर देर तक गरमाये हुए दूध की धुईंली बास' का अनुभव होगा। अज्ञेय का बिजली की चदरीली चाँदनी से भी उतना ही परिचय है, जितनी गहरी अनुभूति उन्हें 'काजल पुती रात में नाव के साथ–साथ सारे संसार की डगमगाहट की है। 'गोचर में खंजनों की दौड़' और पीपल–तले छोटे दिवले की मनौती–सी ही डरी–सहमी लौ, सभी उनकी अनुभूतियों की पूँजी हैं और यह सारी पूँजी समष्टि के सागर को अर्पित है। अज्ञेय की चेतना में गाँव और प्रकृति अपनी पूरी विराटता में चित्रित हैं।

अज्ञेय की सर्जना का एक केन्द्रीय तत्व है, उनकी सौन्दर्य चेतना। अज्ञेय ने सौन्दर्य के विविध आयामों का साक्षात् किया है। मानव सौन्दर्य, पशु–पक्षी का सौन्दर्य, प्रकृति का सौन्दर्य सभी ने उन्हें खींचा है, विस्मय विभोर किया है। अज्ञेय की सौन्दर्य–चेतना में प्रकृति–सौन्दर्य का स्थान सर्वोपरि है। वे सारा जीवन वनों, पर्वतों, सागरों, निर्झरों, प्रपातों, झीलो मरुस्थलों, नाना प्रकार की वनस्पतियों, नदियों हिमशिखरों के बीच भटकते रहे। अज्ञेय के सौन्दर्य के प्रति इस आकर्षण के विषय में रामकमल राय लिखते हैं कि "सौन्दर्य के प्रति इतना आत्यन्तिक आकर्षण जहाँ किसी खतरे या भय की रेखा भी नहीं। यह प्रसंग अकेला नहीं है। बचपन में कश्मीर में एक झील के सौन्दर्य ने वात्स्यायन को इतना अभिभूत किया था कि वे झील में कूद पड़े। तैरना नहीं जानते थे। किसी प्रकार उन्हें निकाला गया।"[1]

अज्ञेय ने वर्षा, बसन्त, ग्रीष्म, शरद सभी ऋतुओं के सौन्दर्य के अप्रतिम चित्र खींचे हैं प्रकृति के सौन्दर्य को वे द्रष्टा भाव से नहीं लेते। वे उस सौन्दर्य को जीते हैं। उनके भीतर वह सौन्दर्य रमता है। प्रकृति से उनका इस प्रकार का

1. रामकमल राय– अज्ञेयः सृजन की समग्रता, पृ० 97

तादात्म्य उनकी अपनी आभ्यन्तरिक रागात्मकता के कारण है। इसीलिए वे कहते हैं–

"आज मैंने पर्वत को नयी आँखों से देखा
आज मैंने नदी को नयी आँखों से देखा।
आज मैंने पेड़ को नयी आँखों से देखा।
आज मैं ने पर्वत पेड़ नदी निर्झर चिड़िया को
नयी आँखों से देखते हुए
देखा कि मैं ने उन्हें तुम्हारी आँखों से देखा है।
यों मैंने देखा
कि मैं कुछ नहीं हूँ।
(हाँ, मैंने यह भी देखा कि तुम भी कुछ नहीं हो।)
मैंने देखा कि हर होने के साथ
एक–न–होना बँधा है।"[1]

ग्रामीण परिवेश की कृषक चेतना युक्त एक कविता 'हवाएँ चैत की' है जिसमें अज्ञेय ने ग्रामीण जीवन में महाजनों द्वारा किये जा रहे किसानों के शोषण की तरफ संकेत किया है–

"बह चुकीं बहकी हवाएँ चैत की
कट गयीं पूलें हमारे खेत की
कोठरी में लौ बढ़ाकर दीप की
गिन रहा होगा महाजन सेंत की।"[2]

अज्ञेय ने पहाड़ी गाँवों की वन–कन्याओं की दिनचर्या तथा फसलों एवं सुनहली प्राकृतिक छवियों का चित्रांकन अपनी एक कविता 'नन्दा देवी' में किया है। जिसमें पूरे पर्वतीय क्षेत्र का ग्राम्य–जीवन जीवंत हो उठा है–

"पुआल के घेरदार घाघरे
झूल गये पेड़ों पर,
घास के गटठे लादे आती हैं
वन–कन्याएँ
पैर साधे मेड़ों पर।
चला चल डगर पर।

---

1. अज्ञेय : सदानीराः सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ० 409
(काव्य संकलन– नदी की बॉक पर छाया)

2. अज्ञेय : सदानीरा : सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ० 264
(काव्य–संकलन–बावरा अहेरी)

नन्दा को निहारते।
तुड़ चुके सेब, धान
गया खलिहानों में,
सुन पड़ती है
आस की गमक एक
गड़रिये की तानों में।
चला चल डगर पर
नन्दा को निहारते।
लौटती हुई बकरियाँ
मढ़ जाती हैं
कतकी धूप के ढलते सोने में।"[1]

जापानी लोककथा पर आधारित 'असाध्य वीणा' कविता में अज्ञेय ने ग्राम्य–परिवेश और प्रकृति–जीवन को व्यापक रूप में चित्रित किया है। इस कविता में संस्कृत साहित्य की आभिजात्य परम्परा और देसी जीवन की आत्मीयता एक दूसरे में घुल–मिल गये हैं। जिस किरीटी वृक्ष 'तरु–तात' से वीणा का निर्माण हुआ है राजसभा में बैठकर उसका स्मरण कलावंत केशकंबली यों करता है–

"ओ विशाल तरु!
शत–सहस्र पल्लवन–पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,

× × × × × × × ×

भरे शरद् के ताल, लहरियों की सरसर–ध्वनि।
कूँजों का क्रेंकार। काँद लम्बी टिट्टिभ की।
पंख–युक्त सायक–सी हंस–बलाका।
चीड़ बनों में गन्ध–अन्ध उन्मद पतंक की जहाँ–जहाँ टकराहट
जल–प्रपात का प्लुत एकस्वर।
झिल्ली–दादुर, कोकिल–चातक की झंकार पुकारों की यति में
संसृति की साँय–साँय।

× × × × × × × × ×

मुझे स्मरण है–
हरी तलहटी में, छोटे पेड़ों की ओट ताल पर
बँधे समय वन–पशुओं की नानाविध आतुर–तृप्त पुकारें–

---

1. अज्ञेय : सदानीरा : सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ० 332–33
(काव्य संकलन, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ)

गर्जन, घुर्घुर, चीख, भूँक, हुक्का चिचियाहट।
कमल–कुमुद–पत्रों पर चोर पैर द्रुत धावित
जल–पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलाँगों की।
पंथी के घोड़े की टाप अधीर।
अचंचल धीर थाप भैंसों के भारी खुर की।"[1]

इस कविता में प्रकृति विविध रूपों में चित्रित हुई है। 'पल्लवन–पतझरों, 'वर्षा–बूँदों' 'उत्सव–ढोलक', आदि शब्दों द्वारा लोक–जीवन की छवि को जीवन्त रूप में कवि ने उभारा है। ठेका, फुरकन, चाप, छलाँग, टाप और थाप शब्द सामान्य प्राकृतिक और जन–जीवन का चित्र उभारते हैं।

अज्ञेय आधुनिक बोध के सहारे लोक से प्रतिबद्ध हैं। लोक सम्पृक्ति की यह भावना अज्ञेय में अनेक स्तरों पर उद्‌घाटित हुई है। उनके काव्य में प्रकृति विविध रंगों में सजकर आई है। ग्रामीण जनजीवन का चित्रण पूरी सहजता और स्वाभाविकता के साथ हुआ है। अज्ञेय के प्रकृति प्रेम में एक विराट और सन्नाटा है। उनका कवि मन प्रकृति के संसर्ग में निर्धन, पीड़ित, संघर्षरत मनुष्यों को भी देखता है। अज्ञेय ने मानवीय व्यक्तित्व की व्याख्या में भाषा को अनिवार्य तत्व माना है। उन्होंने भाषा का सबसे प्रभावी रूप 'मौन' के स्तर पर स्वीकार किया है। उनकी कविताओं में ग्राम्य संस्कृति एवं प्रकृति अपनी पूरी विविधता एवं व्यापकता में चित्रित हुई है।

गजानन माधव मुक्तिबोध :

मुक्तिबोध का काव्य एक सामाजिक जीवन के व्याख्यता का काव्य है। वे प्रगतिशील चेतना के यथार्थवादी कवि हैं। मुक्तिबोध जीवन, समाज और जन–जीवन के भीतरी पहलुओं का विश्वसनीय और यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर गये हैं। मुक्तिबोध एक कठिन समय के कठिन कवि हैं। उन्होंने अपने सच को कठिन वैचारिक और भावात्मक संघर्ष से पाया और कविता में चरितार्थ किया। वास्तविकता यह है कि मुक्तिबोध की अधिकांश कविताएँ उनकी

---

1. अज्ञेय : सदानीरा : सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ० 117–119–20
(काव्य संकलन–ऑगन के पार द्वार)

समाज–संसिक्ति को रेखांकित करती हुई वर्तमान परिवेश की भयावह, दंशक और अभिशप्त जीवन स्थितियों की तीखी अभिव्यंजनाएँ हैं। मुक्तिबोध के व्यक्तित्व के बारे में शमशेर बहादुर सिंह का कहना है कि "किसी ने मुक्तिबोध की एक बरगद से तुलना की है, जो अवश्य ही उनका प्रिय इमेज है। मगर वह बरगद नहीं– चट्टान एक ऊँची, सीधी चट्टान है। शिलाओं पर शिलाएँ। झरने कहीं विरले ही। केवल गहरी बावलियाँ, सूखे कुँए, झाड़–झंखाड़, ऊँची–नीची अनन्त पगडण्डियाँ।....... जैसे मालवा के पठार और मध्यप्रदेश की ऊबड़–खाबड़ धरती और इस धरती आतंकमय, रहस्यमय इतिहास और उनके बीच लहूलुहान मानव।"[1] रमेश कुन्तल मेघ ने मुक्तिबोध को लोक–जीवन का जासूस कहा है। मुक्तिबोध ने अपने चारों और फैली पूँजीवादी व्यवस्था का शोषण, अत्याचार भ्रष्टाचार, हताशा, आतंक मूल्यहीनता, उपभोक्तावाद आदि को देखा था, उन्होंने अपनी कविताओं में फैंटेसी की शैली का इस्तेमाल किया है। इनकी कविताएँ मुख्यतः प्रतीकात्मक हैं। ओरांग उटाँग, रावण, ब्रह्मराक्षस, फणिधर, चम्बल की घाटी, अँधेरा आदि प्रतीक हैं– भयावह प्रतीक। प्रतीकों का चुनाव प्रायः प्रकृति एवं ग्राम्य–जीवन से किया गया है। ये प्रतीक अन्तरमन की गहराइयों को नाप लेने में पूर्णतः सफल हैं। वृक्षों में बरगद और पीपल उनके प्रिय प्रतीक हैं। बरगद जनगण का प्रतिनिधित्व करता है तो पीपल डरावनेपन का। पशु–पक्षियों में ओराँग–उटाँग, औदुम्बर, घुघ्घू आदि का प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया गया है। यूँ परित्यक्त सूनी बावड़ी, खण्डहर, टीला, पहाड़ आदि भी प्रतीक ही हैं, जो मुख्यतः प्रतीकों की भयावहता में इजाफा करते हैं। महाभारत के पात्रों से कृष्ण, वसुदेव, अर्जुन, कंस आदि को इतिहास स्मृति के रूप में लिया गया है। मुक्तिबोध ने अपनी कविता 'जब प्रश्न–चिह्न बौखला उठे' में ग्राम्यांचलीय प्रकृति तथा वहाँ के पारिवारिक सम्बन्धों की आत्मीयता तथा जन संघर्षों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है–

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 21

"झुरमुर–झुरमुर वह नीम हँसा,
चिड़िया डोली,
फर–फर–आँचल तुमको निहार
मानों कि मातृभाषा बोली–
जिससे गूँजा यों घर–आँगन
खनके मानो बहुओं की चूड़ी के कंगन।

× × × × × ×

माँओ का, बहनों का सुहाग सिन्दूर हँसा बरसा–बरसा।
इन भारतीय गृहिणी–निर्झरणी–नदियों के
घर–घर में भूखे प्राण हँसे।

× × × × × ×

बूढ़े पितृश्री के चरणों में लोट–पोटकर
ऐसी पावन धूल हुए–
बहना के हिय की तुलसी पर
घन छाया कर
मंजरी हुए
भाई के दिल में फूल हुए।"[1]

मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता बुद्धिजीवी वर्ग की ट्रेजडी पर लिखी गयी है। ब्रह्मराक्षस लोक जीवन से लिया गया मिथक है। यह वस्तुतः ब्रह्मराक्षस की जब वह मनुष्य रूप में था, 'अंतर्कथा है– उसके पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व प्राप्त करने की प्रक्रिया की कथा, जिसमें उसका आत्मसंघर्ष वर्णित है। प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से कविं ने ग्राम्य जीवन में व्याप्त लोकविश्वासों एवं मान्यताओं को सजीव रूप में प्रस्तुत किया है–

"खूब ऊँचा एक जीना साँवला
उसकी अँधेरी सीढ़ियाँ.........
वे एक आभ्यन्तर निराले लोक की।
एक चढ़ना औ, उतरना
पुनः चढ़ना और लुढ़कना,

× × × × ×

बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चॉद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 172–73

अपना गणित करता रहा
औ' मर गया..........
वह सघन झाड़ी के कँटीले
तम–विवर में
मरे पक्षी–सा
विदा ही हो गया"[1]

मुक्तिबोध के काव्य में आत्मसंघर्ष बहुत तीखे रूप में व्यक्त हुआ है। उनके काव्य में एक तरफ मध्यवर्गीय जीवन की परिस्थितियॉ है और दूसरी तरफ सर्वहारा दृष्टि से की गयी विश्व–समीक्षा, एक तरफ वर्तमान जीवन का अंधकार है और दूसरी तरफ सर्वहारा के विश्व–दृष्टिकोण से प्राप्त भविष्य का उज्ज्वल स्वप्न! उनके काव्य का मध्य–वर्गीय बुद्धिजीवी इन्हीं दोनों को लेकर चलने वाले विकट आत्मसंघर्ष में पड़ा है। मुक्तिबोध के विषय में अशोक वाजपेयी लिखते हैं– "वे एक ऐसे कवि भी हैं जिन्होंने हमारे समय को उसकी भयावह व्यापकता और गहराई में परिभाषित करने की कोशिश की है।"[2] चन्द्रकान्त देवताले मुक्तिबोध के विषय में कुछ यूँ लिखते हैं, "शमशेर जी ने यूँ ही मुक्तिबोध को 'दिक्काल के जुलूस पर पैनी नजर" रखने वाला कवि नहीं कहा है। मुक्तिबोध रास्तों, बीहडों, दर्रों, जंगलों, घाटियों समुद्रों पर चलते ही रहते हैं, दौड़ते–भागते, शोषण–उत्पीड़न, क्रूरता की पहचान करते हैं। यह पड़ताल सिर्फ इतनी नहीं है कि दुनिया कैसी है। इसमें यह भी शामिल है क्यों दुनिया लोगों के जीने लायक नहीं है और यह कैसे सम्भव हो सकती है? इसी जद्दोजहद के तहत ही तो मुक्तिबोध ने विवेचन और विश्लेषण तक को कविता में सम्भव किया है।"[3]

शोषण के जबड़े इतने विशाल हैं कि वे जब फूँक मारते हैं, तो जैसे जोरदार आँधी चलने लगती है। उसी आँधी ने गाँव के गरीबों की झोपड़ियाँ गिरा दी हैं और उनके मकान ढहा दिये हैं और उसी के झोंकों में ग्रामीण जनों

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चॉद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 40–43
2. अशोक वाजपेयी, कवि कह गया है, पृ० 64
3. सम्पादक– लीलाधर मंडलोई– कविता के सौ बरस (वर्तमान साहित्य का शताब्दी कविता विशेषांक), पृ० 140

की जिंदगी धुनकी हुई रूई की तरह उड़ रही है। यह चित्र साधारण यथार्थ को चित्रित करने वाला प्रतीत होता है। 'सूरज के वंशधर' शीर्षक कविता का यह चित्र विश्लेषण करने योग्य है–

"शोषण के भयानक जबड़ों ने फूँक मार
झोपड़ियाँ गिरा दीं व मकान ढहा दिए
झुलसी हुयी पुरानी धुनकी हुई रुई के
टुकड़ों–सी उड़ती है
मनुष्य के साँवले समूहों की जिंदगी।"[1]

मुक्तिबोध जनधारा के लेखक थे, इसलिए वे काव्यरचना में आत्मपरकता के महत्व को भी समझते थे और गीत के महत्व को भी। 'जनता का साहित्य किसे कहते हैं', शीर्षक अपने चर्चित लेख में वे बतलाते है कि "(इसमें) जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श मनोरंजन से लगातार तो क्रान्तिपथ पर मोड़ने वाला साहित्य, मानवीय भावनाओं का उदात्त वातावरण उपस्थित करने वालासाहित्य, मन को मानवीय और जन को जन–जन करने वाला साहित्य, शोषण और सत्ता के घमण्ड को चूर करने वाले स्वातंत्र्य और मुक्ति के गीतों वाला साहित्य प्राकृतिक शोभा और स्नेह के सुकुमार दृश्यों वाला साहित्य–सभी प्रकार का साहित्य सम्मिलित है बशर्ते कि वह मन को मानवीय, जन को जन–जन बना सके और जनता को मुक्ति पथ पर अग्रसर कर सके।"[2]

पुराने महाकाव्य लोक–परंपरा से चलकर अपने वाह्य रूप में विकसनशील होते हैं। मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'अँधेरे में' इस दृष्टि से, लोक–सन्दर्भों से जुड़कर अपने अर्थ में विकसनशील कविता है। सम्पूर्ण जातीय जीवन की विडम्बनाओं का परीक्षण वह बड़े गहरे स्तर पर करती है। स्वप्न, फैंटेसी और अतियथार्थवादी अनुभवों में घुला–मिला चलने वाला उसका कथानक–रक्तालोक स्नात् पुरुष का साक्षात्कार, कवि को दी गई मौत की सजा, रात का विचित्र जुलूस, तिलक की मूर्ति से टपकता ख़ून, विचित्र वेश में गांधी

---

1. नंद किशोर नवल–ज्ञान और संवेदना, पृ० 319
2. वही, पृ० 327

से भेंट फिर उस परमअभिव्यक्ति की तलाश–सांस्कृतिक पुनर्जागरण, राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन और परवर्ती जीवन क्रम का एक विराट संश्लिष्ट चित्र है। 'अँधेरे में' कविता के विषय में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं– "अंधेरे में' का जीवनानुभव मानवता के इतिहास में बार–बार और जगह–जगह आवृत होता है। अँधेरा यदि प्रकृति का धर्म है तो कहीं मानव जीवन की विवशता है। अँधेरे से आदमी डरता है, पर सृजन के क्षण भी अँधेरे में आते हैं।"[1] मुक्तिबोध ने अपनी कविता 'अँधेरे में' के द्वारा ग्रामीण परिवेश, प्रकृति तथा जनजवीन से जुड़े शब्दों तथा प्रतीकों का प्रयोग करके पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ मध्यवर्गीय क्रान्ति पुरुष के संघर्ष को चित्रित किया है। कुछ काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"अँधियारा पीपल देता है पहरा।
हवाओं की निःसंग लहरों में काँपती
कुत्तों की दूर–दूर अलग–अलग आवाज,
टकराती रहती सियारों की ध्वनि से।
काँपती हैं दूरियाँ, गूँजते हैं फासले
(बाहर कोई नहीं, कोई नहीं बाहर)
इतने में अँधियारे सूने में कोई चीख गया है
रात का पक्षी
कहता है–
"वह चला गया है,
वह नहीं आयेगा, आयेगा ही नहीं
अब तेरे द्वार पर।"[2]

मुक्तिबोध की कविता 'चम्बल की घाटी' में पहाड़ियों, झरनों जैसे प्राकृतिक चित्रों के साथ–साथ गाँवों में व्याप्त डाकुओं के भय, आतंक एवं लूट–पाट को चित्रित किया गया है–

"इतने में, सहसा
पथरीले झरने के पहाड़ी उतार पर
(साँय–साँय हाय के सीने में धड़ाके)
फूट पड़ी नारंगी, कत्थई गेरुई ज्वाला
लाल–लाल चादरें,

---

1. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, आधुनिक कविता यात्रा, पृ० 114
2. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 260

सिन्दूरी झण्डियाँ,
सुनहली पताकाएँ फरफरा रही हैं।
और आसमान में
कत्थई गेरूए धूँएँ की बड़ी–बड़ी लहरें
तैरती हैं हवा में।
चिनगियों–भरा झार
दूर–दूर चला तैर
दूर–दूर जा रहा।
हाँ वहाँ
एक गाँव, दहक रहा
गरीबों का गाँव एक,
बिना ठाँव!!
खतरनाक लूट–पाट, आग डकैतियों
चम्बल की घाटियाँ!!"[1]

मुक्तिबोध की कविताएँ अपने समय का जीवंत इतिहास प्रस्तुत करती हैं। उनमें मानवीय जीवन के परिवर्तन के प्रति असीम आस्था, उत्पीड़ित मानव के भविष्य के प्रतिनिष्ठा उपेक्षितों के प्रति गहरा लगाव, ग्रामीण जन–मानस तथा प्रकृति के विविध रूपों में गहरी रूचि पायी जाती है। उन्होंने पारंपरिक प्राकृतिक तथा लोक जीवन में व्याप्त प्रतीकों को लेकर आधुनिक जीवन एवं समाज के विप्लव, विद्रोह, वैषम्य को उद्घाटित किया है। उनकी कविताओं में लोकचेतना का गहरा प्रवाह मौजूद है।

नागार्जुन (वैद्यनाथ मिश्र) :

नागार्जुन यथार्थ चेतना को शब्द बद्ध करके पाठक तक पहुँचाने वाले प्रगतिशील कवियों में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। वे एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने खुली आँखों से और खुले मन से न केवल अपने आस–पास को देखा है, अपितु सूक्ष्म दृष्टि से उस समूचे परिवेश और उसमें व्याप्त विसंगतियों और विषमताओं को भी देखा परखा है। नागार्जुन की कविताओं के प्रमुख विषय प्रकृति, प्रणय, सामाजिक जीवन की विषमता, राजनैतिक अव्यवस्था, आर्थिक असमानता जनित शोषण, उत्पीड़न तथा धार्मिक अंधता के साथ–साथ जीवन के

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 237

गहरे यथार्थ से सम्बन्धित हैं। नागार्जुन को देश की धरती से और उस पर बसने वाली जनता से गहरा लगाव और प्यार रहा है।

जनपदीय प्रकृति और मौसम में नागार्जुन की सम्पूर्ण आन्तरिक चेतना बसती है या यूँ कहें कि उनकी चेतना में जनपद अपने सम्पूर्ण भोलेपन और सौन्दर्य में निवास करता है। आंचलिक रचनाकारों की तरह गाँव की प्रकृति के प्रति उनकी दृष्टि रोमैन्टिक न होकर यथार्थवादी है। वह पाठकों को अपने साथ खेत की मेड़ों के बीच ले जाकर पूरे परिवेश को वंशी–मादल के स्वरों, किशोरियों के कोकिल कंठ, बाल्य स्मृतियों से जोड़कर जीवन की अर्थवत्ता के आस्तिक बना देता है। जिस जीवनोत्सव की चर्चा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने की है उसे नागार्जुन के प्रकृति चित्रों में सिर्फ देखा ही नहीं, बल्कि अनुभव भी किया जा सकता है। कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं–

"अब की मैंने जी–भर सूँघे
मौलसिरी के ढेर–ढेर से ताजे–टटके फूल
– बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी–भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल
– बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी–भर तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
– बहुत दिनों के बाद"[1]

'बादल को घिरते देखा है' कविता की पंक्तियों में कवि नागार्जुन ने प्रकृति के मनोहारी दृश्यों तथा जनजीवन में व्याप्त उत्सवधर्मी चेतना को अभिव्यक्त किया है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत हैं–

"मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर–किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को

1. संपादकः नामवर सिंह, नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 72

वंशी पर फिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।"[1]

नागार्जुन के प्रकृति–चित्र प्रायः जनपदीय हैं और भाषा उससे गहरे प्रभावित है। वे प्रकृति को न तो संश्लिष्ट रूप में चित्रित करते हैं न उसका मानवीकरण करते हैं। कवि की रक्त–मज्जा में रची बसी प्रकृति विभिन्न ऋतुओं में अपने स्वरूप को खोलती चलती है, मादल–वंशी के संग छन्द ढलते–चलते हैं। 'गँवई पगडण्डी की चन्दनवर्णी धूल' के प्रति कितनी गहन आस्तिकता है उनमें। वह प्रकृति को एक ओर ग्राम्य संस्कृति के साथ जोड़ते हैं तो दूसरी ओर जनवादी चेतना से, इसका फल यह होता है कि उसमें आदिम गंधों के बिम्ब के साथ सार्थक परिवर्तन के प्रति उमंगमयी चेतना भी उभरती चलती है। नागार्जुन की कविताओं के विषय में रामविलास शर्मा कहते हैं कि "उनकी कविताएँ लोक–संस्कृति के इतना नजदीक हैं कि उसी का एक विकसित रूप मालूम होती हैं। किन्तु वे लोकगीतों से भिन्न हैं, सबसे पहले अपनी भाषा–खड़ी बोली के कारण, उसके बाद अपनी प्रखर राजनीतिक चेतना के कारण और अन्त में बोलचाल की भाषा की गति और लय को आधार मानकर नये–नये प्रयोग के कारण। हिन्दी भाषी प्रदेश के किसान और मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।"[2] खेती–किसानी तथा ग्रामीण जनजीवन के विषय में उनसे बेहतर और कौन जान सकता है, तभी तो वे कहते हैं–

"गेहूँ की पकी फसलें तैयार हैं–
बुला रही हैं
खेतिहरों को
........."ले चलो हमें
खलिहान में–
घर की लक्ष्मी के
हवाले करो

---

1. संपादकः नामवर सिंह, नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 65
2. रामविलास शर्मा– नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ० 153

ले चलो यहाँ से"
बुला रही हैं
गेहूँ की तैयार फसलें
अपने–अपने कृषकों को.........'[1]

ऋतु परिवर्तन और मनोहारी प्राकृतिक दृश्य नागार्जुन को हमेशा ही आकर्षित करते रहे हैं। काली घटाएँ और पुरवाई नागार्जुन के हृदय को और भी रसमय बना देती हैं। पुजारिन भाभी अपने रसिया देवर को छेड़ती हैं और देवर को हँसी भी आती है। शृंगार रस में नागार्जुन की कविता 'झुक आये कजरारे मेघ' अद्वितीय है, जो ग्राम्य जीवन में व्याप्त पारिवारिक सम्बन्धों की रसमयता को उद्घाटित करती हैं–

"झुक आए कजरारे बादल
कूक उठे मोर
टर्राए मेढ़क
पहुँचकर धीरज के छोर पर
दम साध लिए धरती ने....
बिजली की मूँठ से खुजलाकर पीठ
पुजारिन भाभी बोली–
आँधी आएगी
बादलों को कहाँ से कहाँ उड़ा ले जायेगी
तुम्हारे तो मजे ही मजे रहेंगे
धार के उस पार
झूँसी की तरफ
रेती पर मारोगे टहलान
फड़कते रहेंगे होठ
चमकती रहेंगी आँखें
× × × ×
ओ मेरे रसिया देवर!
और मुझे आ गई हँसी
कूक उठे मोर
और मेरा रोआँ–रोआँ हो उठा कंटकित
टर्राए मेढ़क
और मेरा दिल धड़कने लगा जोरों से
हो उठी तीव्र झीगुरों की रीं रीं रीं.........'[1]

1. संपादक– नामवर सिंह, नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 83

'पहुँचकर धीरज के छोर पर धरती ने दम साध लिए हों'– इस मार्मिक अनुभूति और उसकी सफल अभिव्यक्ति की जितनी भी दाद दी जाय कम हैं उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में नागार्जुन ने एकदम आधुनिकताबोध वाला उपमान प्रयुक्त किया है। मोर कूके और रोआँ–रोआँ कंटकित हो उठा, मेढक टर्राये और दिल धड़कने लगा। जैसे प्रेम की अतिशयता में पहले लोगों को मूर्छा आ जाती थी। ये समस्त वर्णन सम्बन्धों की रागात्मकता को अभिव्यक्त करते है।

नागार्जुन जब अपनी कविताओं में रोजमर्रा की समस्याओं से हटकर अपने जनपद की ओर लौटते हैं तो उनकी वाणी में रागात्मकता का तत्व अधिक घनीभूत हो उठता है और कल्पना में सजीवता आ जाती है पेड़–पौधों, मौसम आदि के चित्रण में उनकी तन्मयता देखते ही बनती है। 'जान भर रहे हैं जंगल में' नामक कविता में प्रकृति का रमणीय चित्रण दर्शनीय है–

"गीली भादों
रैन अमावस.........
कैसे ये नीलम उजास के
अच्छत छींट रहे जंगल में
कितना अद्‌भुत योगदान है
इनका भी वर्षा–मंगल में
लगता है ये ही जीतेंगे।"[2]

नागार्जुन कोटि–कोटि जन के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी कविताओं में मानव के अन्तर्मन की रागात्मक अनुभूतियों और सौन्दर्ययुक्त छवियों का चित्रांकन है। धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, सामाजिक कुरूपता और राजनीतिक व्यवस्था पर उनकी कविताओं में तीखा व्यंग्य किया गया है। नागार्जुन की कविताएँ देश के अभावग्रस्त जीवन का मार्मिक चित्र भी प्रस्तुत करती हैं और यथार्थ स्थितियों का अभिव्यंजन करती हुई समाजव्यापी विसंगतियों पर तीखा प्रहार भी करती हैं। नागार्जुन मात्र भावनाओं के कवि नहीं थे वे लोक से जुड़े हुए कवि थे। यही कारण है कि उनकी दृष्टि में यथार्थता, व्यापकता आ सकी

---

1. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ० 39–40
2. सम्पादक– नामवर सिंह, नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 76

है। लोक दृष्टि से अभिप्राय केवल लोक जीवन से नहीं है, अपितु ग्रामीण परिवेश एवं सम्पूर्ण समाज से है। नागार्जुन की लोक–दृष्टि के वृत्त में समूचा लोक–जीवन अपनी पूरी यथार्थता, वास्तविकता और गुण–दोषों के साथ समा सका है। वे गाँव की माटी और वहाँ के परिवेश में रचे–बसे कवि हैं उनकी कविताओं में ग्राम्य जीवन एवं वहाँ की बहुरंगी, मनोहारी प्रकृति के प्रति गहरी संसक्ति पायी जाती है। नागार्जुन मूलतः ग्राम्य परिवेश एवं किसानी जिन्दगी से जुड़े हुए कवि हैं।

जगदीश गुप्त :

डॉ० जगदीश गुप्त ने नयी कविता को निर्भीक और सत्यान्वेषी दृष्टि का सार्वभौमिक रूप प्रदान किया है। वे नयी कविता के जितने अच्छे व्याख्यता हैं, उतने अच्छे नये कवि नहीं। गुप्त जी ने ब्रजभाषा में सफल कविताएँ की है और उनका काव्य संस्कार रीतिकालीन चमत्कारवादिता से प्रभावित है। प्रकृति की आकर्षक छवियों के चित्रकार होने के साथ–साथ ये आंतरिक जगत की संघर्षमयी चेतना को अभिव्यक्ति देने वाले कवियों में अग्रणी रहे हैं। चित्रकला और मूर्तिकला में गहरी रूचि होने के कारण इनकी प्रारम्भिक कविताओं में रूप की प्रधानता है। जो दृश्य बिम्बों के रूप में सामने आयी है। आलोचकों ने उनके काव्य को सरस काव्य की श्रेणी में परिगणित किया है। 'शब्द दंश' 'हिमबिद्ध' 'नाव के पॉव' आदि काव्य–पुस्तकों में संकलित रचनाओं से यह बात सिद्ध होती है। नयी कविता के प्रति बौद्धिक आग्रह होने के कारण उनके काव्य में यत्र–तत्र नयी कविता की मनः स्थिति प्राप्त होती है। किन्तु ऐसी मनः स्थितियाँ जगदीश गुप्त के काव्य–संस्कार का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य की सूक्ष्म और अनछुई स्थितियों के चित्र इनकी कविताओं में विशेष महत्व रखते हैं। 'हिमबिद्ध' प्रकृति की कविताओं का एक श्रेष्ठ संकलन है। 'शम्बूक' में गुप्त जी की मानववादी चेतना अभिव्यक्त हुई है। इसमें प्रकृतिपरक कविताएँ भी प्रचुर मात्रा में सृजित हुई हैं। 'शंबूक' प्रबन्ध काव्य में नयी कविता के मुक्त छंद एवं

परम्परागत तुकांत काव्य–शिल्प का समन्वय हुआ है। प्रकृतिपरक वर्णन की एक झलक दृष्टव्य है–

"लाल धरती पर हुए एकत्र
उगे संध्याकाश में नक्षत्र
पक्षियों के तार सप्तक छेड़
देर तक बजते रहे हैं पेड़
झर चुके कितने द्रुमों के पात"[1]

रूप बिम्बों के माध्यम से कवि जगदीश गुप्त ने सुन्दर दृश्यों का चित्रण किया है। धान के खेत, वर्षा, वर्षा के बाद के फटे बादल और तदुपरान्त निकलते क्षीण नक्षत्र का सम्पूर्ण दृश्य मूर्त हो उठा है। एक चित्र दृष्टव्य है–

"अंकुरती सी क्यारियों में धान की,
राशि, वर्षा के बिखरते दान की,
हुई संचित
उसी संचित राशि में सीमंत–सी
झिलमिलाई
क्षीण परछाई
फटे टूटे बादलों के बीच से
झाँकते नन्हें नखत की।"[2]

'जयन्त' नामक काव्य–कृति में जगदीश गुप्त ने प्राकृतिक सौन्दर्य का मनोहारी चित्र खींचा है। कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं–

"यह चंदन सा चाँद महकता, यह चाँदी सी रात।
देह लहराती या कि लहर को देता पवन झकोर।
अविरल बोल कि जल में वर्षा की बूँदों का शोर।
शर्मीले से गात कि जैसे छुईमुई के पात
सुनो हमारी बात।
यह चाँदी सी रात।"[3]

जगदीश गुप्त जी ने सुन्दर वर्णचित्र प्रस्तुत किए हैं। वर्णों के अतिरिक्त विविध वर्णों का मिश्रण भी चित्रित हुआ है। जैसे– पर्वत अंधकार से घिरते जा

---

1. डॉ० रश्मि कुमार, नयी कविता के मिथक–काव्य, पृ० 226
2. डॉ० उमा अष्टवंश– छायावादोत्तर काव्य में बिम्बविधान, पृ० 197
3. जगदीश गुप्त, जयन्त, पृ० 51

रहे थे, किन्तु पर्वत शिखर अभी तक आलोक से जगमगा रहे थे। कुछ ही क्षणों में अस्त होते सूर्य की लालिमा ने पर्वत–शिखर को इस प्रकार रंग दिया मानों किसी ने मेंहदी रचा दी हो–

"कितने क्षण बीते अभी,
झिलमिल झलकती,
उन ऊँची हिम कोरों तक
गोरी उँगलियों में–
पोर–पोर,
मेंहदी–सी रच गयी।"[1]

जगदीश गुप्त जी ने रूपबिम्बों में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप में चित्रण किया है। प्रकृति के प्रति कवि की मोहपूर्ण दृष्टि उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। अधिकतर उन्होंने रूई से बादल, कोमल हवा, हल्की धूप, भीगी चाँदनी जैसे कोमल प्रकृति चित्रों का अंकन किया है। क्षीर, कुंकुम, केसर आदि के विविध रंग भी उनकी कविताओं में बिखरे पड़े हैं। कवि की रूचि सौन्दर्य चित्रणों में अधिक रमी है। कवि ने प्रकृति के नाना बिम्बों को प्रस्तुत किया है। उनके सुन्दर प्राकृतिक चित्रों के अंकन से पूरा ग्रामीण परिवेश जीवन्त हो उठा है।

केदारनाथ अग्रवाल :

केदारनाथ अग्रवाल जनकवि हैं, उनकी प्रारम्भिक कविताएँ प्रगतिवाद के उदाहरण के रूप में सामने आयी थीं परन्तु धीरे–धीरे वे अपने काव्य को वाद से मुक्त करने में सफल हुए हैं। केदारनाथ अग्रवाल का परवर्ती काव्य उनके विशद एवं व्यापक सृजन–धर्म का परिचायक है। नयी कविता कितनी रागात्मक, सम्प्रेषणीय एवं सहज हो सकती है इसका सफल उदाहरण केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ हैं। केदारनाथ अग्रवाल प्रकृति सौन्दर्य और मानवीय मूल्यों के कवि हैं। वे प्रगतिवादी धारा के सुमित्रानन्दन पन्त कहे जाते हैं। पंत पर पहाड़ी प्रकृति का काल्पनिक रंग है तो केदार पर गाँव की प्रकृति का यथार्थवादी रंग। इस प्रकृति–चित्रण को केदार 'प्रकृति का किसानी चित्रण' कहते हैं। उनकी

---

1. डॉ० उमा अष्टवंश, छायावादोत्तर काव्य में बिम्बविधान, पृ० 201

ख्याति का कारण किसानी चित्रण ही है। भयानक अर्थकष्टों का सामना कर रही ग्रामीण महिलाओं का चित्र केदारनाथ अग्रवाल ने कुछ यूँ खींचा है–

"गाँवों की औरतें
सूखा पिसान फाँक–फाँक कर,
पीठ पेट एक कर– हाड़ तोड़
मरती हैं पत्थर रगड़ कर!!"[1]

गरीबी पर व्याख्यान देना आसान है, पर कविता लिखना कठिन है। केदार की रचना में व्याख्यान नहीं है, नपा तुला चित्रण है। अपने इसी सधे हुए चित्रण के माध्यम से कवि ने उसमें जबर्दस्त आक्रोश भर दिया है। सूखा पिसान फाँक कर हाड़ तोड़ मरती हैं, पत्थर रगड़कर। सबकुछ सूखा नीरस लेकिन इन सबके भीतर आग भरी है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ प्रकृति से, प्रेम से, आस–पास के आदमियों से, लोकजीवन से, सुन्दर दृश्यों से, भूचित्रों से, यथावत चल रहे व्यवहारों से और इसी तरह की अनेकरूपताओं से विरचित होती हैं। फूल, तितलियाँ और धूप उनके प्राकृतिक वर्णनों को और मनोहारी बना देते हैं जैसे ये काव्य पंक्तियाँ–

"धूप में खड़ा
हँसता है फूला गुलमोहर,
फूल है
कि पेड़ पर बैठीं पंख खोले
झुंड–की–झुंड तितलियाँ हैं
रसराज की रंगीन अभिव्यक्तियाँ हैं।"[2]

केदार बाबू प्रकृति–चित्रण के अनूठे बिम्ब, अनूठी शैली में हमारे सामने रखते हैं जो बार–बार ध्यान आकर्षित करती हैं। प्रकृति–चित्रण की कुछ पंक्तियाँ यहाँ दृष्टव्य हैं–

"धीरे से पांव धरा धरती पर किरनों ने
मिट्टी पर दौड़ गया, लाल रंग तलुओं का

1. रामविलास शर्मा– नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ० 266
2. केदारनाथ अग्रवाल, अपूर्वा, पृ० 85

छोटा—सा गाँव हुआ केसर की क्यारी—सा
कच्चे घर डूब गये केचन के पानी में
× × × × × ×
चोली फटी सरस सरसों की
नीचे गिरा फागुनी लहंगा
ऊपर उड़ी चुनरिया नीली
देखो हुई पहाड़ी विवसन
आतपतप्ता।"[1]

केदार जी को ग्रामीण जीवन से विशेष प्रेम है। उन्होंने ग्रामीण लोगों के दुःखों और विपदाओं को देखा और समझा है। ग्रामीण परिवेश और वहाँ के प्राकृतिक उपादानों नदी—पहाड़—खेत, पेड़ आदि को एक नई पहचान देकर उनके प्राकृत सौन्दर्य को कवि ने जीवंत रूप में चित्रित किया है। ग्रामीण परिवेश में ढलते हुए दिन का खूबसूरत चित्र कवि ने कुछ इस प्रकार खींचा है—

"दिन हिरण—सा चौकड़ी भरता चला।
धूप की चादर सिमिटकर खो गई
खेत, घर, वन, गाँव का
दर्पण किसी ने तोड़ डाला
शाम की सोना—चिरैया
नीड़ में जा सो गई
पेड़—पौधे बुझ गए जैसे दिए
केन ने भी जाँघ अपनी ढाँक ली
रात है यह, रात अंधी रात
और कोई कुछ नहीं है बात!'[2]

केदार अपने उल्लसित, आनन्दमग्न, मस्ती से भरे हुए प्रकृति—चित्रण के लिए अपना सानी नहीं मानते। 'चन्द्रगहना से लौटती बेर' नामक कविता हिन्दी के प्रकृति—काव्य में अद्वितीय स्थान रखती है—

"एक बीते के बराबर
यह हरा ठिंगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का

---

1. संपादक— सुभाष सेतिया, आजकल, पृ० 30
2. वही, पृ० 37

सज कर खड़ा है,
पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है लचीली,
नील फूले–फूल को सिर पर चढ़ाकर
कह रही है जो छुए यह
दूँ हृदय का दान उसको।
और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिए हैं
व्याह मंडप में पधारी
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे
देखता हूँ मैं स्वयंवर हो रहा है।"[1]

केदार रंगों के कवि हैं, उनकी कविताओं में ग्राम्य जीवन की उत्सवधर्मी चेतना एवं रंग–बिरंगी सुनहली प्रकृति धनीभूत रूप में चित्रित हुई है।

शमशेर बहादुर सिंह ने केदारनाथ अग्रवाल को 'धरती' और 'धूप' का कवि कहा है। केदार की कविता की बुनियादी चिन्ता मनुष्य और जीवन है। मानव श्रम को उन्होंने गहरे तक पहचाना है और उसे प्यार और सम्मान दोनों दिया है। गाँव की तमाम समस्याओं पर जहाँ उन्होंने कविताएँ लिखीं हैं वहाँ भला गाँव का किसान कैसे छूटता! केदार बाबू को किसान चेतना का कवि कहना ज्यादा समीचीन होगा। किसान का गुण–गौरव निम्न पंक्तियों में देखें–

"जो मिट्टी का पूर्ण पारखी
जो मिट्टी के संग साथ ही
तपकर, गलकर, जीकर, मरकर
सोने का सपना
मिट्टी की महिमा गाता
मिट्टी के ही अंतस्थल में
अपने तन की खाद मिलाकर
मिट्टी को जीवित रखता है।"[2]

---

1. डॉ० कान्ति कुमार, नयी कविता पृ० 122–23
2. संपादक– सुभाष सेतिया, आजकल, पृ० 30

केदारनाथ अग्रवाल की प्रकृतिमूलक कविताएँ इतनी सहज और आकर्षित करने वाली हैं कि उनके यहाँ प्रकृति हमेशा बोलती मिलती है। केदार प्रकृति का श्रृंगार ही नहीं करते बल्कि प्रकृति की गोद में पलने–पुसने वाले जीव–जन्तुओं की कुशल क्षेम से लेकर उनके रंग–राग, जन्मोत्सव का भी ख्याल रखते हैं। इस कविता में देखिए कवि गिलहरी का कितने तन्मय भाव से जन्मदिन मना रहा है–

"नीम के पेड़ पर
चढ़ी बैठी
आज
अपना जन्म–दिन
मनाती है
सखी–सहेलियों के साथ
अल्हड़ गिलहरी
जैसे कोई
राजकुमारी
राजमहल के अंतरंग में
मनाये अपना जन्म–दिन
राज परिवार के साथ।"[1]

केदारनाथ ने प्रकृति को बहुत निर्वसन होकर न सिर्फ देखा है बल्कि भोगा और जिया है। ऐसी प्रवृत्ति कवि ने गहरी जीवनासक्ति से अर्जित की है जो इसलिए सम्भव हुई है क्योंकि केदार धरती और प्रकृति से उसी तरह जुड़े थे जैसे एक विशाल वृक्ष पृथ्वी में शायद अपनी विशाल जड़ों में बँधा होता है। हरे पेड़ और फूल–फल मानवीय पीड़ाओं को हरकर सुख और प्रसन्नता की अनुभूति कराते हैं–

"हर्ष के हरे पेड़ जहाँ हँसते हैं,
फूल–फूल हुए महकते हैं,
नाजुक
पंखुरियों से,
दुःख–दर्द को परास्त करते हैं।"[2]

---

1. केदारनाथ अग्रवाल, अपूर्वा, पृ० 80
2. वही, पृ० 38

कवि केदारनाथ अग्रवाल को ग्रामीण जीवन से विशेष प्रेम है। कवि ने सिर्फ ग्रामीण जीवन के दैन्य चित्रों को ही काव्य का विषय नहीं बनाया है अपितु ग्राम्य जनों के अपने परिवार और समाज के प्रति गहरे राग–भाव, किसान और उसकी धरती पर लहलहाती फसलों तथा बहुरंगी सुनहली ग्राम्य–प्रकृति को भी कवि ने पूरी जीवंतता के साथ अपनी कविता में उभारा है। प्रकृति के किसानी रूप का चित्रण उनकी कविताओं में पाया जाता है। केदार के काव्य में प्रकृति की सम्पूर्ण रमणीयता गाँवों के साथ जुड़ी हुई है। यही कारण है कि उन्हें एक छोटा–सा गाँव केसर की क्यारी जैसा लगता है। श्रमशील ग्रामीण जीवन के प्रति उनकी अगाध आस्था के ही कारण उनकी समग्र कविताएँ श्रमिक जीवन का कारखना लगती हैं। किसान जीवन की वह सम्पूर्ण थाती जो खलिहान में इकट्ठा कर दी गयी है उन्हें बेहद मोहक लगती है। केदार जी की कविताओं में भारतीय ग्राम्य जनों की आत्मा बसती है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :

नयी कविता को दिशा देने, युग जीवन की गवाह बनाने, जर्जर रूढ़ियों से मुक्त कर संतुलित संवेदना और शिल्प में ढालने, सौन्दर्य–बोध के नये प्रतिमानों से जोड़ने, जन–जीवन का सांस्कृतिक इतिहास और भूगोल प्रस्तुत करने, समसामयिक जीवन मूल्यों की खोज करने तथा परिवेश और जीवन के प्रति सचेत दृष्टि रखने वाले कवियों में सर्वेश्वर की जगह काफी ऊँची है। सर्वेश्वर मध्यवर्गीय चेतना के कवि, हैं। उन्होंने आम आदमी की जिन्दगी को हमारे परिवेश के संकट को आत्मीय, सहज और विश्वसनीय शिल्प में ढालकर प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं में ग्रामीण परिवेश और ग्राम्य लय की सजीव अभिव्यक्ति पायी जाती है। 'कुआनो नदी' शीर्षक कविता में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने बाढ, बीमारी, आर्थिक तंगी तथा प्रकृति की मार झेलते ग्रामीण लोगों का मार्मिक चित्र खींचा है, कुछ काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"बरसात का पानी
आज भी गांवों में भरता है
बिना जगत के कुँओं के भीतर चला जाता है।

आदमी और चौपाये
खरवा से घायल पैर की उँगलियाँ
और खुर लिए लँगड़ाते चलते हैं,
सुअर लोटते हैं,
पानी में बैठी औरतें खाना पकाती हैं
उनके चूल्हों में टीन की चादरें लगी होती हैं
नीचे पानी रहता है
ऊपर लकड़ियाँ धुँआ उगलती हैं
कभी–कभी लपट भी
जिससे अदहन खौल जाता है।'[1]

हरे–भरे पेड़–पौधों और नदी–तालाबों तथा विविध प्रकार के पक्षियों से गांव का प्राकृतिक परिवेश निर्मित होता है। पेड़–पौधों से पक्षियों के रिश्ते को सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी 'रिश्ता' नामक कविता में उद्‌घाटित किया है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत्‌ हैं–

"कितना निराला रिश्ता है
पेड़ का चिड़िया से।
वह नहीं जानता
वह उस पर उतरेगी
या यों ही मँडराकर चली जायेगी।
उतरेगी तो कितनी देर के लिए
किस टहनी पर
वह नहीं जानता।
वह यहाँ घोंसला बनायेगी
या पत्तों में मुँह छिपाकर सो जायेगी
वह नहीं जानता।'[2]

प्रकृति चित्रों में कवि ने ग्राम की संध्या का सजीव चित्र खींचा है–

"गहरा नीला धुआँ
उस छोटे भूरे गांव के सीमान्त पर
जम गया है।'[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुआनों नदी, पृ० 18
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 46
3. डॉ० उमा अष्टवंश, छायावादोत्तर काव्य में बिम्बविधान, पृ० 233–34 (काव्य–संकलन–काठ की घंटियाँ)

सर्वेश्वर जी ने मानव–प्रकृति का रूपांकन भी किया है। प्रकृति के चित्र प्रकारान्तर से मानव को प्रस्तुत करते हैं। ग्राम जीवन से जुड़ी छवि निम्नवत् है–

"तुम, जो एक लम्बी यात्रा से
लौटी हुई धूल भरी, थके ऊँघते
हुए बैलों वाली बैलगाड़ी के समीप
भोर के कुहासे में लिपटी हुई, एक
उनींदी नीली चिड़िया सी फुदक रही
हो, और मुझे आहिस्ता से
जगाते हुए, अपने होंठों की मुसकान
दबाकर, महज इतना कह रही हो:
'अब घर आ गया है, उठो न।'[1]

दाम्पत्य सम्बन्धों में व्याप्त गहरा रागात्मक बोध हमारी ग्राम्य संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। ग्रामीण स्त्रियाँ अपने पतियों के मंगलमय एवं सुखमय जीवन की कामना के लिए विभिन्न प्रकार की मनौतियों एवं धार्मिक अनुष्ठानों, व्रत–उपवास, पूजा–पाठ में गहरी आस्था रखती हैं। सर्वेश्वर जी की कविता 'सुहागिन का गीत' में इसकी स्पष्ट झलक हम देख सकते हैं–

"यह डूबी–डूबी साँझ
उदासी का आलम,
मैं बहुत अनमनी
चले नहीं जाना बालम।
ड्योढ़ी पर पहले दीप जलाने दो मुझ को,
तुलसी जी की आरती सजाने दो मुझको,
मंदिर में घण्टे, शंख और घड़ियाल बजे,
पूजा की साँझ सँझौती गाने दो मुझको,
उगने तो दो पहले उत्तर में ध्रुव तारा
पथ के पीपल पर कर आने दो उजियारा,
पगडण्डी पर जल–फूल–दीप धर आने दो।[2]

नयी कविता की पहिचान जहाँ से बननी शुरु होती है वहाँ सर्वेश्वर की कविताएँ हैं। नयी कविता मानव जीवन की सामान्य–सी दिखने वाली घटनाओं

---

1. डॉ० उमा अष्टवंश, छायावादोत्तर काव्य में बिम्बविधान, पृ० 234
(काव्य–संकलन–काठ की घंटियाँ)

2. सम्पादक– अज्ञेय, तीसरा–सप्तक, पृ० 214

और स्थितियों से जुड़ी हुई है। यह मामूली आदमी की जीवन स्थितियों का चित्रण करती है। नयी कविता की मूल समस्या सामान्य घटनाओं और स्थितियों को अर्थवान बनाने की है। नयी कविता जीवन को सम्पूर्णता में चित्रित करती है। इसमें गहरी लोक–संपृक्ति पायी जाती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नयी कविता के ऐसे कवि हैं जिन्होंने उसको सार्वजनीनता और व्यापकता प्रदान की। उनकी कविताओं में ग्रामीण परिवेश एवं वहाँ के जनजीवन के प्रति गहरा लगाव पाया जाता है। उनकी एक कविता 'यहीं कहीं एक कच्ची सड़क थी' में एक ओर अतीत के प्रति सम्मोहन–भाव है तो दूसरी ओर समसामयिक सन्दर्भ में सरल ग्रामीण जीवन के ऊपर पाश्चात्य रंग में रँगी नागरिक सभ्यता का कठोर आक्रमण भी चित्रित है–

"सुनो! सुनो!
यहीं कहीं एक कच्ची सडक थी
जो मेरे गाँव को जाती थी।"[1]

कच्ची सड़क वास्तव में भारतीय ग्रामीण निष्ठा का प्रतीक है जो हमारी संवेदना को ग्राम्य परिवेश एवं वहाँ के जन–जीवन से जोड़ती है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में गहरी लोक–सम्पृक्ति पायी जाती है। उनकी कविताओं में एक प्रकार की निजता और आत्मीयता हमेशा रही है। सर्वेश्वर प्रजातन्त्र के सामान्य व्यक्ति के सामान्य जीवन की चिन्ताओं के कवि हैं। उनमें ग्राम्यॉंचलीय प्रकृति तथा जनजीवन के प्रति गहरा लगाव पाया जाता है। उनकी प्रकृति परक कविताओं में चिड़िया, टहनी, वारिश की बूँदे तथा घास आदि ग्राम्य प्रकृति को जीवंत रूप में उद्घाटित करते हैं। ग्रामीण जीवन में व्याप्त अभाव, गरीबी, बाढ़ जैसी समस्याओं को उनकी कविताओं में सजीव रूप में चित्रित किया गया है। सर्वेश्वर जी की कविताओं में युग–यथार्थ एवं ग्राम्य–प्रकृति के मोहक चित्र खींचे गये हैं।

1. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, नयी कविताएँ : एक साक्ष्य, पृ० 20

भवानी प्रसाद मिश्र :

भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से लोकजीवन का निर्मल प्रवाह दिखाई देता है। भवानी प्रसाद मिश्र 'दूसरा सप्तक' के पहिले कवि है। उनकी काव्य–चेतना मूलतः सामाजिक यथार्थ के साथ–साथ सांस्कृतिक दृष्टि सम्पन्न है। मिश्र जी के काव्य में नयी कविता की सारी विशेषताएँ पायी जाती हैं। उनकी काव्य संवेदना के विषय में कृष्णदत्त पालीवाल का कहना है कि "मिश्रजी की मानसिक बनावट में 'ग्रामीण चेतना' की बड़ी भूमिका रही है। मूलतः तो वे भारतीय ग्रामीण–संवेदना के ही कवि हैं।"[1] 'मंगल–वर्षा' नामक कविता में कवि ने वर्षा–ऋतु में प्रफुल्लित ग्राम्य जीवन एवं प्रकृति का बडा मनोहारी चित्र खींचा है–

"और सखी सुन मोर! विजन वन दीखे घर–सा–री।
पीके फूटे आज प्यार के, पानी बरसा री।
फुर–फुर उड़ी फुहार अलक हल मोती छायें री,
खड़ी खेत के बीच किसानिन कजरी गाये री,
झर–झर झरना झरे, आज मन प्राण सिहाये री,
x x x x x x x
रात सुहागिन गात मुदित मन साजन परसा री।'[2]

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में एक विशेष प्रकार की लोक आत्मीयता का स्पर्श महसूस होता है। उनकी कविताओं में प्रकृति और ग्राम जीवन का अनुभव अधिक आत्मीय और कौटुम्बिक स्तर पर होता है। 'सतपुड़ा के जंगल' नामक कविता में मिश्र जी ने ग्राम्यांचलीय प्रकृति तथा वहाँ पर निवास करने वाली जनजातियों की उत्सवधर्मी चेतना को सुन्दर तथा जीवंत अभिव्यक्ति दी है–

"झोंपड़ी पर फूस डाले
गोंड तगड़े और काले
जब कि होली पास आती,
सरसराती घास गाती,

---

1. कृष्णदत्त पालीवाल, भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, पृ० 89
2. सम्पादक : अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ० 29–30

और महुए से लपकती,
मत्त करती बास आती,
गूँज उठते ढोल इनके,
गीत इनके गोल इनके,
सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
ऊँघते अनमने जंगल।''[1]

ग्राम्य–जीवन महानगरीय सभ्यता की चकाचौंध से दूर होने के कारण लोक विश्वासों और जन–श्रुतियों को परम्परागत रूप में संजोये रहता है। इसीलिए बहुत सी बातें परम्परागत विश्वासों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित रहती हैं। भवानी प्रसाद मिश्र ने भी इस भाव–बोध की 'सन्नाटा' नामक एक कविता लिखी है। इस कविता में एक राजा और रानी की कहानी के माध्यम से जंगल–झाड़ियों की तहों में जनश्रुतियों पर आधारित एक आख्यान लोक कथा शैली में प्रस्तुत किया गया है–

''मैं ऐसे ही खँडहर चुनता–फिरता हूँ
मैं ऐसी ही जगहों में पला–बढ़ा हूँ।
× × × × × ×
तुम जहाँ खड़े हो, यहीं कभी सूली थी,
रानी की कोमल देह यहीं झूली थी,
हाँ, पागल की भी यहीं यहीं रानी की,
हर जगह गूँजता था पागल का गाना
× × × × × ×
रानी का हँस कर सुन पड़ता, था ताना।'[2]

'सन्नाटा' सहजतम बोध की नयी कविता है। यहाँ नयी कविता की समस्त विशिष्टताओं का अर्थ–विन्यास एक साथ दृष्टिगोचर होता है। यह कविता कथा–कहानी से पाठक को आत्मीय बनाती है फिर सामन्तों की घिनौनी वृत्तियों को संकेतित करती है कि कैसे राजा ने रानी को मौत की सजा दी थी। मिश्र जी की कविताओं में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ भी पाये जाते हैं।

---

1. सम्पादक : नन्द किशोर आचार्य, मन एक मैली कमीज है (कविता संचयन)– भवानी प्रसाद मिश्र, पृ० 19
2. सम्पादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ० 26–27

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में व्याप्त सांस्कृतिक चेतना के विषय में कृष्णदत्त पालीवाल का कहना है कि "हमारी सांस्कृतिक परम्परा का चिन्मय–चिन्तन या उपनिषद् चिन्तन मिश्र जी में बेहद रिला–मिला है। उनकी अहिंसा के स्रोत गांधी में ही नहीं, उपनिषद् दर्शन तथा बौद्ध दर्शन में भी निहित है।"[1]

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में ग्राम्य–जीवन के जो चित्र खींचे गये हैं उनमें बचपन तथा यौवन दोनों बोल रहे हैं। ग्राम्यॉंचलीय प्रकृति अपनी समग्रता में मनोहारी रूप में चित्रित हुई है, जहाँ फूलों, गिलहरियों, चिड़ियों और जंगलों को शब्दों के भ्रमजाल से बचाए रखकर सजीव रूप में चित्रित किया गया है। उनकी लोकोन्मुखी काव्य चेतना फूलों के पास जाकर उनका रंग, गंध और रूप ग्रहण कर, सुबह से हरियाली घास लेकर, नील गगन से उसका असीम विस्तार लेकर विकसित होती रही है। 'गीत फरोश' में अधिकांश प्रकृति के रूप वर्णन से सम्बद्ध कविताएँ हैं जहाँ कवि प्रकृति का उमंगपूर्ण एवं उल्लसित चित्र कुछ यूँ खींचता है–

"सूरज, चाँद, फूल या लहरें, फागुन या बरसात सभी के,
सन्ध्या, विन्ध्या और हिमालय, रेवा, पीपल–पात सभी के।"[2]

भवानी प्रसाद मिश्र भाव और भाषा दोनों स्तरों ग्राम्य चेतना से जुड़े हुए कवि हैं। नयी कविता को नयी भाषा भवानी प्रसाद मिश्र ने ही दी है। भाषा को लोक–जीवन से टेर–पुकारकर, खोजकर, बीनकर, छानकर, छीनकर कवि ने ग्राम्य–संवेदना से संपृक्त कर अभिव्यक्त किया है।

शमशेर बहादुर सिंह :

शमशेर दृष्टि से मार्क्सवादी कवि हैं, परन्तु उनका कवि सौन्दर्यवादी है। उनकी कविताओं में प्रेम और प्रकृति–सौन्दर्य का अद्भुत समिश्रण पाया जाता है। उनकी कविताओं में शूक्ष्म और संश्लिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक हुई

---

1. कृष्ण दत्त पालीवाल, भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, पृ० 89
2. डॉ० कान्ति कुमार, नयी कविता, पृ० 67

है। शमेशर नयी कविता से सम्बद्ध होकर भी नयी कविता वादियों में अनूठे, विशिष्ट और अद्वितीय माने जाते हैं। सपाटबयानी और खण्डित बिम्बों के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करना इन्हें बहुत प्रिय रहा है। शमशेर के बारे में मलयज का कथन है– "शमशेर 'मूड्स' के कवि हैं किसी विजन के नहीं।"[1] शमशेर के प्रकृति–चित्रण में अतियथार्थवादी झलक बार–बार मिलती है। प्रकृति जितनी उनके बाहर है उतनी ही भीतर है। प्रकृति चित्रण में उनका ज्यादा लगाव जल या कि आकाश से है मिट्टी से उतना नहीं। पानी और आसमान को वे नये–नये रूप में गढ़ते हैं–

"एक नीला आइना
बेठोस–सी यह चाँदनी
और अन्दर चल रहा हूँ मैं
उसी के महातल के मौन में।'[2]

शमशेर के काव्य में लोकोन्मुखता के भी दर्शन होते हैं उनके गीतों में लोकगीतों जैसी खनक और लयात्मकता तथा लोक–संपृक्ति पायी जाती है। काव्य–पंक्तियाँ दर्शनीय हैं–

"छलिया रैन
कजर ढरकावे
सँझही से सजनी।।
निंदिया सतावे मोहें।
दुअि नैना मोहें
झुलना झुलावें
सँझही से सजनी।।
निदिया सतावे मोहें।'[3]

नयी कविता काव्यधारा में सामान्य घटनाओं और जीवन के लघु–लघु क्षणों तथा लघुमानव को महत्व दिया गया और उन्हें पूरी सजीवता और सहजता के साथ चित्रित किया गया इसी विषय में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है

---

1. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 208
2. संपादक– नामवर सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 107
3. वही, पृ० 113

कि "प्रयोगवाद के आगे नयी कविता का यह एक मूल स्वर है– सामान्य घटनाओं में सोये हुए या स्थगित जीवन की पहिचान। जो उदात्त है वह स्वयं काव्य है, अपने से जीने योग्य है; अनुदात्त को रचना और उसे जीने योग्य बनाना यह नये कवि का वैशिष्ट्य है, जीवन के अन्दर जनतन्त्र को बढ़ाना है। शमशेर में इसकी अच्छी पहल हुई है। दिन के चौबीस घण्टों और वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिनों की छोटी–बड़ी घटनाओं में जीवन अबाध गति से प्रवाहित हो रहा है।"[1] 'धूप कोठरी के आईने में खड़ी' कविता में बिम्बों की सादगी को देखा जा सकता है। एक छोटी सी मनः स्थिति है, हल्की प्रकृति और वैसा ही हल्का अवसाद कविता में घुले मिले हैं–

"धूप कोठरी के आइने में खड़ी
हँस रही है
× × × × ×
एक मधुमक्खी हिलाकर फूल को
बहुत नन्हा फूल
उड़ गई
आज बचपन का
उदास माँ का मुख
याद आता है।"[2]

प्रेम, प्रकृति चित्र, प्रणय–भावना तथा मानवीय सम्बन्धों में व्याप्त रागात्मकता शमशेर की कविताओं में चित्रित हुए है। 'बाले दीप' शीर्षक गीत में मानवीय सम्बन्धों का राग तथा प्रणय–भावना कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है–

"नव रस सनी नारि,
निजतन आँचल सँवार उर
अपने प्यारे को अगोरती
यौवन द्वारे
बाले दीप रे
चतुर नारि ने
पिय आगमन को।"[3]

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 208
2. संपादक– नामवर सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 131

शमशेर बहादुर सिंह ने रूप बिम्बों के माध्यम से प्रकृति के सुन्दर चित्र अपनी कविताओं में उकेरे हैं। वर्षा का दृश्य मूर्त करने वाली काव्य–पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"कि मेघ गरजे;
और मोर दूर और कई दिशाओं से
बोलने लगे–पीयूअ! पीयूअ! उनकी
हीरे–नीलम की गरदने बिजलियों की तरह
हरियाली के आगे चमक रही थीं।
कहीं छिपा हुआ बहता पानी
बोल रहा था: अपने स्पष्ट मधुर
प्रवाहित बोल।"[2]

वर्षा–ऋतु का सजीव चित्रण कवि ने किया है। मेघ की गर्जना, मोर की हर्षित पुकार उनकी गर्दनों का वर्ण सभी कुछ सजीव हो उठता है। कवि ने व्यक्तिगत भावों तथा प्रकृति सौन्दर्य को भावबिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। शमशेर किसी वाद के वादी न रहे हों किन्तु भावनाओं की सच्चाई और खरेपन से वे अवश्य प्रतिबद्ध रहे हैं। शमशेर अन्तर्दृष्टि संपन्न कल्पना के कवि है, वे खूबसूरत लयात्मक सृष्टि करते हैं। कवि का अवचेतन मन प्रकृति–चित्रण और प्रणयगाथा में अधिक रमता हुआ प्रतीत होता है। उनकी काव्य–सर्जना लोकोन्मुखी है उसमें ग्राम्य जन–जीवन वहाँ का परिवेश एवं प्रकृति पर्याप्त मात्रा में चित्रित हुए हैं। शमशेर में विराट प्रकृति अपने आत्मीय रूप में चित्रित हुई है।

रघुवीर सहाय :

रघुवीर सहाय नयी कविता के उन कवियों में हैं। जिनका प्रभाव समकालीन कविता पर सबसे अधिक पड़ा है। उनका काव्य–संसार मामूली, अभावग्रस्त और उपेक्षित जिन्दगी का संसार है। वे हमारे समकालीन यथार्थ को तल्खी और संवेदना के साथ पेश करते हैं। उनकी कविताएँ प्रबल रूप से

---

1. संपादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ० 96
2. डॉ० उमा अष्टवंश, छायावादोत्तर काव्य में बिम्बविधान, पृ० 158

जनपक्षीय हैं। भाषा को उन्होंने नया तेवर दिया है। व्यंग्य, सपाटबयानी और बिंबात्मकता तीनों का उन्होंने सर्जनात्मक प्रयोग किया है। रघुवीर सहाय की कविताओं में अनाहत जिजीविषा, मध्यवर्गीय जीवन का दबाव और लोकतान्त्रिक जीवन की विडम्बनाएँ चित्रित हुयी हैं। रघुवीर सहाय की कविता के विषय में डॉ0 अशोक वाजपेयी का कहना है कि ''रघुवीर सहाय की कविता में हमारे समय और समाज के दुःख को उसकी जगह मिली है– वे 'झूठे करुणामय मन' को धिक्कारते हुए जानते थे कि– ''वह दुःख ही सच्चा है जो हमने झेला है।' यह जगह किसी भावुकता या रुमानियत से नहीं, सख्ती और कठिनाई से पाई, दी गई जगह है और हिन्दी कविता में स्मरणीय रहेगी। रिल्के ने कहा था कि– ''रोजमर्रा के जीवन और महान कृति में प्राचीन शत्रुता है।'' रघुवीर सहाय ने इसके बावजूद रोजमर्रा को ही शाश्वत में बदलने और समझने का सफल दुस्साहस किया।''[1] सामान्य बोलचाल और साधारण अनुभव सर्जनात्मक रूप में ढलकर रघुवीर सहाय की कविता में आये हैं। यही वजह है कि कविता चाहे प्रकृति की हो चाहे प्रेम की, बाजार की या कि संसद की, उनकी भाषा में कोई ऐंठन नहीं आती। आमों के विरवों के बीच कोयल की कूक, सुनहली धूप तथा घोंसलों में बैठे पक्षियों के माध्यम से कवि ने रूपहली प्रकृति का सुन्दर चित्र खीचां है–

''उजडी डालों के अस्थिजाल से छनकर भू पर गिरी धूप
लहलही फुनगियों के छत्रों पर ठहर गयी अब
ऐसा हरा–रुपहला जादू बनकर जैसे
नीड़ बसे पंछी को लगने वाला टोना,
मधुरस उफना–उफना कर आमों के बिरवों में बौराया
उमँग–उमँग उत्कट उत्कण्ठा मन की पिक–स्वर बन कर चहकी'[2]

1. डॉ० अशोक वाजपेयी, कवि कह गया है, पृ० 98
2. सम्पादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ० 140

'धूप' कविता के माध्यम से रघुवीर सहाय जी ने गत्यात्मक बिम्ब के सहारे अनुभूति के एक–एक क्षण को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"और तिनका लेने फुर्र से उड़ जाती है चिड़िया
हवा का एक डोलना है: जिसमें अचानक
कसे हुए गुलाब की गमक है और गर्मियाँ आ रही हैं–
हालांकि अभी बहुत दिन हैं–
कितनी सही है मेरी पहचान इस धूप की।"[1]

कवि के पास इस धूप के अनुभव का अपना अतीत भी है। इस अतीत और भविष्य की सापेक्षता में कवि धूप की पहचान को फिर से परिभाषित करते हुए धूप के इस सामान्य अनुभव में सोये हुए जीवन को आविष्कृत करता है। चिड़िया का फुर्र से उड़ना, कसे हुए गुलाब की गमक, हर साल की तरह गौरैया अबकी भी कर्निस पर तिनके इकट्ठा करके घोंसला बना रही है। इन सब चित्रणों से ग्राम्य जीवन एवं प्रकृति के प्रति कवि का गहरा लगाव अभिव्यक्त हुआ है। कवि ने अपने ग्राम्य एवं प्रकृति से जुड़े जीवनानुभवों को गहरी रचनात्मकता के साथ उभारा है। रघुवीर जी ने प्रकृति को तटस्थ मनः स्थिति से देखा परखा और व्यक्त किया है। प्रकृति–चित्रों में प्रकृति का सौन्दर्य और मानवीय स्थिति का संश्लिष्ट अंकन कवि ने किया है। ऐसे वर्णनों में प्रकृति और मानवीय सम्बन्धों के प्रति गहरी आत्मीयता अभिव्यक्त हुयी है। काव्यपंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"दूर क्षितिज पर महुओं की दीवार खड़ी है
जिस पर चढ़कर सूरज का शैतान छोकरा
झाँक रहा है
चौड़े चिकने पत्तों की ललछौर फुनगियों को सरका कर
नीड़ों में फिर लौटीं मँडराती पिड़कुलियाँ
× × × × × × ×
फैल गया गोरी धरती पर झिंझरा–झिंझरा
चाँदी के काँटों वाला बाँका बबूल

---

1. सम्पादक– सुरेश शर्मा, रघुवीर सहाय, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 36 (काव्य संकलन, सीढियों पर धूप में)

निर्जल मेघों की हलकी छायाओं–जैसा।
है खड़ा हुआ तनकर खजूर।"[1]

रघुवीर सहाय की कविताओं के विषय में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि "उनकी छोटी कविताओं में ही जीवन का इतना विस्तार और वैविध्य है कि महाकाव्य के लिए गिनाए गये वर्ण्य विषयों की लम्बी सूची और उसकी सार्थकता अनायास याद हो आती है। मनुष्य और मनुष्य, मनुष्य और प्रकृति, प्रविधि तथा राजनीति की अनेक स्तरीय टकराहटों को सहज ढंग से कवि अंगीकार करता है और यों 'सारा का सारा जीवन' अनेक भंगिमाओं में वहाँ उजागर होता चलता है।"[2] 'पहला पानी' शीर्षक कविता में रघुवीर सहाय ने वर्षा–ऋतु में ग्रामीण जन– जीवन एवं प्रकृति तथा किसानी जिन्दगी की आशाओं–आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया है। एक चित्र दर्शनीय है–

"खुलकर बरसा पहला पानी
इन धुले–धुले बिरवों के नीचे से होकर
बह चली गाँव की गैल–गैल
कच्ची मिट्टी की सुघर गेहुँई दीवारें
मन–ही मन भीगीं,
छवनी छप्पर नतशिर धारण करते जल
× × × × × × ×
फिर मिट्टी में जीवन की आशा जागी है
गलते हैं दकियानूसी मिट्टी के ढ़ेले
पिछली फसलों की गिरी पड़ रही हैं मेड़ें
× × × × × × ×
सारे अनबोये खेतों की उजली धरती।"[3]

रघुवीर सहाय जी ने नये–नये बिम्बों का सर्जन कर यथार्थ सापेक्ष उपमाओं का प्रयोग किया है। इसके साथ ही परंपरित 'मैले उपमानों को यथासंभव त्यागने की कोशिश की गई है। 'सायंकाल' शीर्षक कविता में कवि ने

---

1. संपादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ० 152
2. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–नयी कविताऍ : एक साक्ष्य, पृष्ठ 31–32
3. सम्पादक : अज्ञेय–दूसरा सप्तक, पृष्ठ 142

ग्रामीण जनों की दिनचर्या का जीवंत चित्रण किया है जिससे सम्पूर्ण ग्राम्य परिवेश हमारी ऑखों के सामने सजीव हो उठता है–

"आगे–आगे गोरू जिन की चिकनी पीठों
पर साँझ बिछल कर चमक रही।
अब शीतल जल की चिंता में
लगती बहुओं की भीड़ कुएँ पर
मँजी गगरियों पर से किरणें घूम–घूम
छिपती जातीं पनिहारिन के साँवल हाथों की चुड़ियों में
धीरे–धीरे झुकता जाता है शरमाये नयनों–सा दिन।"[1]

रघुवीर सहाय की कविताओं में अभावग्रस्त आम आदमी की अनाहत जिजीविषा मध्यवर्गीय जीवन का दबाव और लोकतंत्र की विडंबनाएँ चित्रित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे साहित्य का ध्यान गाँवों की ओर गया। सहाय जी की कविताओं में चित्रित गॉव अपने गाँव मालूम पड़ते हैं। बसंत, पहला पानी, सायंकाल इसके प्रमाण है। गाँव का बसन्त सरसों के फूलों, फसलों के गदराये तन, गेहुएँ गालों और गदराई फसलों में आता है। 'पहला पानी' के टटके अछूते बिम्ब अन्यत्र नहीं मिलेंगे। रघुवीर सहाय की कविताओं में एक तरफ जहाँ लोकतान्त्रिक व्यवस्था में व्याप्त घोर भ्रष्टाचार, गरीबी और अभाव का दंश झेल रहे आम आदमी का मार्मिक चित्र खींचा गया है, वहीं दूसरी तरफ ग्राम्य प्रकृति एवं कृषक जीवन तथा वहाँ की समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं को जीवंत रूप में चित्रित किया गया है।

नरेश मेहता :

नरेश मेहता नयी कविता के प्रमुख कवियों में से एक हैं उनकी काव्य–चेतना में सांस्कृतिक राग की हल्की–गहरी अनुगूँज सुनाई पड़ती है। उनकी कविताओं एवं गीतों पर ऋग्वैदिक ऋचाओं के बिम्बों का गहरा प्रभाव है। ये बिम्ब नये संदर्भ में अद्‌भुत आकर्षण और टटकापन लेकर आये हैं। वनपाखी सुनों बोलने दो चीड़ को, उत्सवा, और 'मेरा समर्पित एकांत' उनके प्रमुख काव्य–संग्रह हैं। 'संशय की एक रात' नाटक शैली में लिखी गयी लंबी कविता

1. सम्पादक : अज्ञेय–दूसरा सप्तक, पृ० 153

है। 'मेरा समर्पित एकांत' की महत्वपूर्ण लंबी कविता है 'समय–देवता'। इसे नरेश ने नयी कविता की पहली लंबी कविता कहा है। समय–देवता में धरती के विभिन्न भागों की सांस्कृतिक, राजनीतिक स्थितियों का सीनिरियो प्रस्तुत किया गया है। नरेश मेहता की कविता में भी प्रकृति तथा ग्राम्य परिवेश के प्रति गहरे लगाव के दर्शन होते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति अपने विविध रूपों में आती है। फूल, बसंत, पहाड़, घाटी, सावन, नदी, झील, आकाश, बादल सूरज, चाँद, चिड़िया आदि कई रूपों में प्रकृति उनकी कविताओं में मौजूद है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन नरेश जी ने बड़े उल्लास के साथ किया है। उनकी कविताओं में उषा, धूप, और किरन का वर्णन सबसे अधिक हुआ है। ग्राम्य परिवेश एवं प्रकृति का सुन्दर चित्र नरेश जी की कविता 'किरन धेनुएँ' में उद्‌घाटित हुआ है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

''ग्वालिन–सी ले दूब मधुर
वसुधा हँस–हँस कर गले मिली,
चमका अपने स्वर्ण सींग वे
अब शैलों से उतर चली,
बरस रहा आलोक दूध है,
खेतों खलिहानों में,
जीवन की नव किरन फूटती
मकई के धानों में,
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला।''[1]

नरेश मेहता के काव्य में वैदिक परम्पराओं, भारत की प्राचीन गौरवमयी संस्कृति, ग्राम्य परिवेश एवं वहाँ की सांस्कृतिक विशेषताओं के प्रति गहरा राग पाया जाता है। उनके विषय में गोविन्द मिश्र जी कहते हैं ''बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार, वैष्णवी सम्प्रदाय के आधुनिक गायक..........या'' फाल्गुनी चैत्र–हवा, आरण्यकता, ग्रामीण हवाओं का पुंज, विंध्या का कांतारीपन, प्रातः काल

1. सम्पादक : अज्ञेय–दूसरा सप्तक, पृ० 114

का भव्य मौन, सन्यासी मन की नितान्तता, सागर जो कि बुद्ध है, जो कि कृष्ण है..........या कुछ नहीं केवल "काव्य एकांत"?[1]

नरेश मेहता के काव्य में ग्राम्य–संस्कृति के प्रति गहरी श्रद्धा एवं उदात्तता का भाव पाया जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि एवं मानवीय सभ्यता के प्रति उनकी कविताओं में निष्कलुष पूजा भावना पायी जाती है। उनके काव्य–संकलन 'उत्सवा' की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"आकाश में अनाविल उड़ते
हारिल तोतों के ये स्वच्छन्द छन्द
दिशाओं को चित्रित कर जाते हैं।
फाल्गुन के प्रातः कालीन आकाश का अन्तिम तारा
बृहस्पति नहीं शुक्र होता है।
खेतों पर से आती हवा में
धन–धान्य की जीवनी गन्ध होती है।
केवड़े के सुगन्धित आलिंगनों को अस्वीकारतीं
ये नायिकाएँ
दाक्षिणात्य हवाएँ ही तो हैं
जो बस्तियों पर
जंगलों पर
ग्रामीण मानुषी मन पर मायावस्त्र बुन रही हैं।'[2]

नरेश मेहता की एक बड़ी विशेषता है, एक विशेष प्रकार के सरल ग्राम्य प्राकृतिक वातावरण के निर्माण की क्षमता। इस क्षमता की बहुत कुछ जिम्मेदारी उनकी शब्दावली के कंधों पर है। प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में 'मेघ मैं' 'पीले फूल कनेर के' 'मेघ पाहुन द्वार' 'मालवी फागुन' उल्लेखनीय हैं। मेघ नरेश मेहता की बहुत सी कविताओं का विषय है। 'पीले फूल कनेर के' में लोकगीतों की शैली और शब्दावली का सुन्दर उपयोग किया गया है। 'मालवी फागुन' जिसे आजकल नवगीत कहा जाता है, कुछ वैसी ही रचना है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"काली माटी सरसों फूली,
फागपाग में नीचे ढूली

1. प्रधान सम्पादक : गोविन्द मिश्र–अक्षरा (द्वैमासिकी जनवरी फरवरी, 2001), पृ० 5
2. श्री नरेश मेहता–उत्सवा, पृ० 57

खिरनी जंगल, हिरनी चंचल
फागुआ चलती ज्यों बट भूली,
खुले खेत कोयल कूक सुन
सेमल करे विलास!!
बड़भागों बौरी अमराई
महुआ फूला, बेरें आई।"[1]

नरेश मेहता की काव्य–सर्जना का महत्वपूर्ण स्रोत उनका प्रकृति साक्षात्कार है। प्रकृति को उन्होंने नित नये रूप में देखा है। कवि की दृष्टि का ही परिणाम है कि उनकी काव्य–यात्रा का विपुल अंश प्रकृति की ओर उन्मुख है। नदी, पर्वत, झरने, सूर्य, वनस्पतियाँ, चन्द्र, ऊषा, सन्ध्या, आकाश, दिवस, पुष्प, पत्रादि उनकी कविता के प्रमुख उपादान हैं। 'बोलने दो चीड़' को काव्य संग्रह की 'माघ भूले' कविता की प्रकृति चित्रों से परिपूर्ण पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"माघ भूले वन हमारे
× × × ×
हम खड़े थे वन किनारे
साथ थी फगुआ तुम्हारे
× × × ×
गाछ कुल हरसा
नरसुलों के फूल पर सहसा
रंग तो बरसा–
हलद सरसों संग
सुनहला कास भी सरसा,
× × × ×
किन्तु तुमको तो लगे
कचनार
टेसू ही अधिक प्यारे।"[2]

नरेश जी ने ग्राम्य परिवेश से जुड़कर एवं प्रकृति के झरोखे से संस्कृति की पहचान और शोध की प्रक्रिया पूर्ण की। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल उद्गमों को ढूँढने पहचानने के साथ–साथ संस्कृति के उदात्तीकरण का एक

---

1. श्री नरेश मेहता–बनपाखी! सुनो!! पृ० 51
2. श्री नरेश मेहता–बोलने दो चीड को, पृ० 30–31

विराट कवि–सुलभ प्रयास किया। ग्राम्य–संस्कृति एवं वहाँ की मनोहारी प्रकृति के प्रति उनके राग भाव को निम्न काव्य पंक्तियों में देखा जा सकता है–

"ग्राम्य जलों वाले
ये नदी, नाले, पोखर, बावड़ी
अर्थात् जल मात्र कुटुम्बीजन हैं।
कन्याओं ने अपनी अल्हड़ता
वधुओं ने अपना काम–प्रसाधन
इन्हीं एकान्त, संकोची जलों में निहारा है

× × × × × ×

धरती के प्रार्थना–पदों सी
आलाप लेती ये पगडण्डियाँ,
संकोची ग्रामीण आत्मीय जल
वनस्पतियों की ये शत–शत पंचतन्त्री कथाएँ
कुछ भी
क्या कुछ भी तुम्हें अब आमन्त्रित नहीं करते?"[1]

ग्राम्य परिवेश एवं प्रकृति के प्रति संसक्ति का भाव हम नरेश जी की निम्न काव्य पंक्तियों में स्पष्टतः देख सकते हैं–

"दूर कहीं
नीचे बाँसों के जंगल की घाटी में कोई हवा भर गयी–
ग्वाले की वंशी सी गाती हवा जंगली
टेर रही बदली की गायें।
तन मन जिसका बिजली हो वह
हरिण मेघ मैं–'[2]

प्रकृति और लोक जीवन की सुन्दर झाँकी नरेश मेहता की कविताओं में पायी जाती है। नरेश मेहता की कविताओं में प्रकृति और ग्राम्य जीवन का उदार और अनाविल मानवतावादी दृष्टि से किया गया भावभीवा चित्रण मिलता है। उनमें वैष्णवी और वैदिक परम्परा की गहरी छाप मिलती है। वे चैत्रहवा की तरह हैं–जो वेद–पुराण–उपनिषदों से छनकर बहती है, भारतीय अस्मिता के सत्व को लिए वह और भी भारहीना हो जाती है। उनकी कविताएँ ऋचाओं जैसी हैं, उनमें

1. श्री नरेश मेहता–उत्सवा, पृ० 56–57
2. श्री नरेश मेहता–बनपाखी! सुनो !! पृ० 25

प्राकृतिक शक्तियों का उद्बोधन है। प्रकृति और सम्पूर्ण मानव–सृष्टि के प्रति विराट दृष्टि उनकी कविताओं में पुष्पित पल्लवित हुई है। उनकी दृष्टि में जिस प्रकार फूल पृथ्वी का वानस्पतिक निवेदन है, उसी प्रकार काव्य मानवीय वानस्पतिकता का वाचस्पतिक फूल है। नरेश जी की कविताओं में ग्राम्य संस्कृति एवं प्रकृति का विराट भावबोध से युक्त चित्रण मिलता है। उनकी कविताओं में सम्पूर्ण प्रकृति एवं लोकजीवन अपनी पूरी रागमयता एवं उत्सवता के साथ उपस्थित है।

धर्मवीर भारती :

धर्मवीर भारती नयी कविता के कवियों में रोमांटिक मनोभावों के कवि हैं। उनकी रचनाओं में प्रेम के विविध रूपों का जीवन्त और आवेगमय चित्रण मिलता है। इनकी यथार्थ जीवन दृष्टि से प्रेरित रचनाएँ भी रोमानी अनुभूतियों से सराबोर है। भारती ने अपने काव्य द्वारा 'अंधे संशय, दासता, पराजय से मानव भविष्य को बचाने के लिए मानवीय सम्भावनाओं की खोज' की है। इसके लिए उन्होंने मिथकों की नयी व्याख्याएँ की हैं। धर्मवीर भारती ने नारी प्रेम और प्रकृति के सम्बन्ध में भी कविताएँ लिखीं हैं। प्रकृति और नारी–प्रेम दोनों के प्रति उनकी दृष्टि रूमानी है। 'अंधायुग' को छोड़कर उनके प्रायः सम्पूर्ण काव्य की भाषा पर रूमानीपन का प्रभाव देखा जा सकता है। उनके द्वारा रचित गीतिनाट्य 'अंधायुग' युद्ध की कठोर भूमि में कृष्ण को नये रूप में प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत 'कनुप्रिया' में उनके कोमल मानवीय रूप के साथ राधा की उदात्त, समर्पणमयी वृत्ति का तलस्पर्शी अंकन हुआ है। 'कनुप्रिया' की विशिष्टता इस अर्थ में है कि इसमें राधा–कृष्ण के सुपरिचित कथा–प्रतीक से नयी दृष्टि और नये परिप्रेक्ष्य को अभित्यक्त किया गया है। प्रकृति सौन्दर्य और नारी प्रेम की प्रगाढ़ अभिव्यक्ति धर्मवीर भारती जी की कविता 'तुम्हारे पाँव मेरी गोद में' की काव्य पंक्तियों में हुई है–

''ये हवायें शाम की
झुक झूम कर बिखरा गयीं
रोशनी के फूल हरसिंगार से

University of Baroda

प्यार घायल साँप–सा लेता लहर,
अर्चना की धूप–सी
तुम गोद में लहरा गयीं,
ज्यों झरे केसर
तितलियों के परों की मार से" [1]

धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' में संकलित नये कवि हैं इनके काव्य–संकलनों में ठंडा लोहा, अंधायुग, सात गीत वर्ष, कनुप्रिया प्रमुख हैं। इन सभी संकलनों में कवि का प्रेम, प्रकृति के प्रति राग, परिस्थितियों का वैषम्य आदि व्यक्त हुए हैं। धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया' में भावाकुल तन्मयता को अपनी कलात्मक मेधा के जरिए प्रस्तुत किया है। राधा–कृष्ण के प्रणय सम्बन्धों के वर्णन में कवि ने ग्राम्य परिवेश एवं वहाँ की सौन्दर्यशालिनी प्रकृति को जीवंतरूप में चित्रित किया है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"उस दिन तुम उस बौर लदे आम की
झुकी डालियों से टिके कितनी देर मुझे वंशी से टेरते रहे
ढलते सूरज की उदास काँपती किरणें
तुम्हारे माथे के मोरपंखों
से बेबस बिदा माँगने लगीं–
मैं नहीं आयी
गायें कुछ क्षण तुम्हें अपनी भोली आँखों से
मुँह उठाये देखती रहीं और फिर
धीरे–धीरे नन्दगाँव की पगडण्डी पर
बिना तुम्हारे अपने आप मुड़ गयीं–" [2]

'सात गीत वर्ष' काव्य संकलन में कवि ने लोक संवेदना से जुड़े गीतों के माध्यम सम्पूर्ण ग्राम्य परिवेश एवं वहाँ की संस्कृति एवं मोहक प्राकृतिक सौन्दर्य को जीवंत रूप में उभारा है। 'कस्बे की शाम' शीर्षक कविता में कवि ने ग्रामीण परिवेश में ढलते हुए दिन का सुन्दर चित्र खींचा है–

"झुरमुट में दुपहरिया कुम्हलायी
खेतों पर अन्हियारी घिर आयी
पश्चिम की सुनहरिया धुँधरायी

---

1. सम्पादक : अज्ञेय–दूसरा सप्तक, पृ० 167
2. धर्मवीर भारती–कनुप्रिया, पृ० 22

टीलों पर, तालों पर,
इक्के–दुक्के अपने घर जाने वालों पर
धीरे–धीरे उतरी शाम!" [1]

गाँव में ढ़लते हुए दिन का एक और चित्र कवि ने कुछ यूँ खींचा है–

"नावों ने लंगर डाल दिये, घाटों पर सन्ध्या–दीप जले
मेले से सब राही लौटे, अपनी–अपनी चौपाल तले
गहना गुरिया, पंखे डलिया, टिकुली बेंदी, सेदुर सारी–
सोरह सिंगार सजे, सब गाँव।" [2]

'सात गीत वर्ष' काव्य संकलन में कवि ने गाँव के ऊबड़–खाबड़ रास्तों, खेत, टीलों, पोखरों, अमराइयों, लोक विश्वासों, परम्पराओं आदि को सजीव रूप में चित्रित किया है। प्रणय सम्बन्धों को प्रगाढ़ अंतरंग दैहिकता के साथ–साथ प्रेमानुभूति के गहरे आयामों में चित्रित किया गया है।

धर्मवीर भारती की आरम्भिक कविताऍ बहुत–कुछ कैशोर भावुकता से युक्त हैं। भारती में आदिम गन्ध की तड़प और लोक–जीवन की रूमानी छवि की पकड़ है। इसीलिए उनकी कविताएँ मूलतः गीतात्मक हैं। इन कविताओं में लोक–परिवेश की मस्ती और उल्लास के स्थान पर उदासी और सूनापन ही अधिक उभरता हैं:

"घास के रस्ते उस बंसवट से
इस पीली–सी चिड़िया
उसका कुछ अच्छा–सा नाम है
मुझे पुकारे ताना मारे
भर आयें ऑंखड़ियाँ!
उन्मन, ये फागुन की शाम है!" [3]

भारती जी के काव्य में रूमानी भावुकता के साथ–साथ यथार्थ की गहराई भी पायी जाती है। उनके काव्य में प्रेम के बहुत सूक्ष्म एवं संक्रान्त अनुभवों को भी उभारा गया है। उनमें कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ भी हैं जो किसी सांस्कृतिक

---

1. धर्मवीर भारती–सात–गीत–वर्ष, पृ० 48
2. वही, पृ० 76
3. धर्मवीर भारती–ठण्डा लोहा, पृ० 22

सामाजिक तथा राजनीतिक विसंगति पर हल्का–हल्का आघात करती हैं। मानव संवेदना की आँच में मूल्यों सम्बन्धी प्रश्न भी उभारे गये हैं। 'डोले का गीत' शीर्षक कविता में धर्मवीर भारती ने ग्राम्य संस्कृति में व्याप्त मानवीय सम्बन्धों की रागात्मकता, गहरी प्रणय भावना तथा लोकगीतों की शैली में विरहानुभूति के विविध चित्रों को जीवंत रूप में उभारा है। एक चित्र दर्शनीय है–

"अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुवेला
यहाँ अँबवा तरे रूक
एक पल विश्राम लेना
मिलो जब गाँव भर से, बात कहना, बात सुनना
भूलकर मेरा
न हरगिज नाम लेना

× × × × × × × ×

भोर फूटे, भाभियाँ जब गोद–भर आशीष दे दें
ले विदा अमराइयों से
चल पड़े डोला हुमच कर
है कसम तुमको, तुम्हारे कोंपलों से नैन में आँसू न आएँ
राह में पाकड़ तले
सुनसान पाकर
प्रीत ही सब कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सबसे बड़ी
बोलना रूँधते गले से–
'ले चलो ! जल्दी चलो ! पी के नगर!" [1]

नयी कविता में प्रेम के उदात्त चित्रों की छवियाँ भी दुर्लभ नहीं है। धर्मवीर भारती केवल तन के रिश्ते से प्रेम को इस उदात्तता तक ले गये हैं कि तन का आकर्षण समाप्त होने के बाद भी पूर्ण प्रेम–स्मृति से जादू जैसा स्पन्दन होने लगता है। प्रेम और प्रकृति के प्रति गहरा राग तथा लोकोन्मुखता भारती जी की कविताओं की प्रमुख विशेषता है। 'डोले का गीत', 'फागुन की शाम', 'गुनाह का गीत' तथा 'बोआई का गीत' जैसे लोक–गीतों की शैली में रचे गये गीतों के माध्यम से उन्होंने लोक संस्कृति तथा ग्राम्य परिवेश एवं वहाँ की सौन्दर्यमयी सुनहली प्रकृति को पूरी रागमयता एवं जीवंतता के साथ उकेरा है। भारती जी

---

1. धर्मवीर भारती–ठण्डा लोहा, पृ० 20–21

मुख्यतः प्रणयानुभूति के कवि है। रंग–बिरंगी चित्रात्मकता तथा उन्मुक्त रूपोपासना से उनका काव्य संसार आच्छादित है, जो मानवीय संबन्धों को रसमय बनाता है तथा जीवन में एक नया राग–बोध जागृत करता है।

कुँवरनारायण :

नयी कविता के कवियों में कुँवरनारायण का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। कुँवरनारायण एक चिन्तक कवि हैं। 'तीसरा सप्तक' में कवि–वक्तव्य से यह पुष्ट हो जाता है। 'चक्रव्यूह' शीर्षक उनका पहला काव्य–संग्रह नयी कविता के एक विशिष्ट स्तर का द्योतक है। कुँवरनारायण के काव्य में भौतिकता, दुरूहता और उलझाव के बावजूद समकालीन जीवन व्यापक रूप से उद्‌घाटित हुआ है। ये मानवीय मूल्यों में रत रहने वाले कवि हैं। इनकी कृति 'आत्मजयी' मूल्य–चिन्ता के लिए उल्लेखनीय है। आत्मजयी का नचिकेता, मूल्यान्वेषी प्रवृत्ति के साथ पाठक जगत के सामने आता है। 'परिवेशः हम तुम' के अन्तर्गत संकलित कविताएँ भी प्रकृति, प्रेम, समाज के साथ–साथ मूल्यों की भूमिका पर पढ़ी जा सकती हैं। 'तीसरा सप्तक' में संकलित कविता 'जाड़ों की एक सुबह' में ग्राम्य प्रकृति से जुड़े चित्रों को देखा जा सकता है। एक चित्र दर्शनीय है–

"फूलों के गुच्छों से
मेघ–खण्ड रंग–भरे
झुक आये मखमल के
खेतों पर रुक ठहरे,
पहिनाते धरती को
फुलझड़ियों के गजरे" [1]

बादल, पक्षी, फूल, वन और सरिताओं के माध्यम से कवि ने सतरंगी प्रकृति का सुन्दर रूप चित्रित किया है। एक चित्र दृष्टव्य है–

"कुछ दूर उड़ते बादलों की बेसँवारी रेख,
या खोते, निकलते, डूबते तिरते
गगन में पक्षियों की पाँत लहराती:

× × × × × ×

---

1. अज्ञेय– तीसरा सप्तक, पृ० 157.

सरिता की सतह पर नाचती लहरें,
बिखेरे फूल अल्हड़ वनश्री गाती.........'' [1]

कुँवरनारायण सन्तुलित और स्वस्थ संवेदनाओं के कवि हैं। 'चक्रव्यूह' काव्य संकलन में कवि जीवन के नाना संघर्षो से जूझने और उन पर विजय प्राप्त करने का संदेश देता है। चक्रव्यूह में रहना आदमी की नियति है तो उसे तोड़ना उसका धर्म है। कवि अपनी सुकोमल कल्पना द्वारा इस जीवन–जगत की सारी सीमाओं को लाँघकर मनोहर प्रकृति का दृश्यांकन कुछ इस प्रकार करता है–

''किसने बटोरा?
चमकीले फूलों से भरा
तारों का लबालब कटोरा
× × × × × ×
किसने झकझोरा दूर उस तरू से
असंख्य परी हासों को?
कौन मुस्करा गई
वन–लोक के अरचित स्वर्ग में
बसन्त विद्या के सुमन–अक्षर बिखरा गई?
पवन की गदोलियाँ कोमल थपकियों सें
तन–मन दुलरा गईं?'' [2]

'परिवेशः हम–तुम' काव्य–संग्रह में कवि 'चक्रव्यूह' से निकलकर जीवन के सर्जनात्मक लक्ष्य की ओर संकेत करता है। तभी तो कवि को प्रकृति के व्यापारों में माँ सरीखी पावनता और ममत्व का स्पर्श महसूस होता है। 'सवेरे–सवेरे' कविता की पंक्तियाँ इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं–

कार्तिक की एक हँसमुख सुबह।
नदी तट से लौटती गंगा नहाकर
सुवासित भीगी हवायें
सदा पावन
माँ सरीखी
अभी जैसे मंदिरों में चढ़ाकर खुश रंग फूल

---

1. अज्ञेय– तीसरा सप्तक, पृ० 152.
2. कुंवरनारायण– चक्रव्यूह, पृ० 7.

× × × × × × ×
और सोते देख मुझको जगाती हों–"[1]

पहाड़ी प्रकृति में धूप और बादलों की गतिशीलता से उत्पन्न मनोहारी छटा को कवि ने कुछ इस प्रकार वर्णित किया है–

"खिलते धूप के बादल
अँधेरे पर्वतों पर तैरते
इस श्रृंग से उस श्रृंग पर
इन घाटियों में
चोटियों पर
छींटते रोली.......................'[2]

कवि ने अपनी कल्पनाशीलता से समय को मानवीकृत रूप में चित्रित किया तथा उसे रंग–बिरंगी सुनहली प्रकृति से क्रीड़ा करने के लिए स्वच्छन्द छोड़ दिया है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"तितलियों के पीछे भागता समय
रंग–मुग्ध
निकल गया बच्चे–सा खेलता उधर
इस सुनहली धूप के पार–
जहाँ दूसरे फासले, दूसरे वन–उपवन"[3]

'नयी कविता' के पहले अंक में प्रकाशित 'जाडों की एक दोपहर' शीर्षक कविता में कवि ने जाड़ों की दोपहर का चित्र खींचा है। तथा प्रकृति के विविध अवयवों वृक्षों, पक्षियों, क्षितिज, सरिता, भीड़ आदि का सशक्त चित्रांकन किया है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"वृक्षों की क्षितिज की मेड़ पर कुछ भीड़।
चुहलते पक्षियों की तोतली कविता,
पवन की लोरियों में ऊँघती सरिता।
बरसती दृष्टि के उस छोर तक अविराम
जाड़ों की उजागर गुनगुनी सी घाम.........
रुको.....प्रिय..........

---

1. कुंवरनारायण– परिवेश : हम–तुम, पृ० 58.
2. कुंवरनारायण– चक्रव्यूह, पृ० 93.
3. कुंवरनारायण– परिवेश : हम–तुम, पृ० 53.

विश्रान्ति की इस अरौंदी छाया तले।"[1]

कुँवरनारायण की कृति 'आत्मजयी' की कथा–वस्तु 'कठोपनिषद' की यम नचिकेता कहानी पर आधारित है। उपनिषद्काल वैदिक काल के भौतिकवाद के विरूद्ध एक आध्यात्मिक प्रतिक्रिया है। इस कृति में भी भौतिकता के विरूद्ध इसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी है। किन्तु इसे जीने की सार्थकता या सर्जनात्मकता से जोड़कर आधुनिक बना दिया गया है। यह कृति पिता–पुत्र के संघर्ष को लेकर लिखी गयी जीवन की सृजनात्मक संभावनाओं में आस्था के लाभ की कहानी है। आत्मजयी में धार्मिक या दार्शनिक पक्ष के साथ–साथ मनुष्य और प्रकृति के बीच के घनिष्ठ सम्बन्धों को भी पर्याप्त महत्व दिया गया है। कुँवरनारायण ने 'आत्मजयी' में व्यक्ति की अस्मिता को प्राकृतिक प्रतीकों में बाँधकर कल्पना सौन्दर्य को उजागर किया है। ग्रामीण परिवेश को सजीव करती हुयी काव्य–पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"जैसे यह धूप हरे खेतों पर
अनायास दो–पहर जिन्दगी उड़ेलती,
ठण्ड से ठिठुर रहे तलवों को सेंकती.........
जैसे वह नदी–नदी चली गयी पगडण्डी
सूना पथ,
आसमान,
मँडलाती एक चील..................इतना हूँ" [2]

नयी कविता में प्रकृति चित्रों का अंकन काफी मात्रा में हुआ है। विविध वर्णी प्रकृति सजीव रूप में चित्रित हुई है। आत्मजयी में कुँवरनारायण ने घाटियों, पंछियों और तारों के माध्यम से प्राकृतिक परिवेश को साकार रूप दिया है–

"सोयी घाटियों की भीतरी अशान्ति,
पंछियों की उनींदी अथाह बोलियाँ–
अकस्मात् गहराइयों से छूकर
सतह पर तैर आते बुदबुदों–सी।
तारे मन मारे

---

1. सम्पादन : (जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेवनारायण साही)–नयी कविताः रचना पक्ष, (खण्ड दो) पृ० 173
2. कुँवरनारायण –आत्मजयी, पृ० 32.

सहस्रों सन्दर्भों में
एक–एक भाव का नीरव विन्यास,
समझ नहीं पाते हैं बेचारे......................" [1]

कुँवरनारायण का काव्य परिष्कृत, गम्भीर मस्तिष्क और सहज संवेदनशील तथा भावप्रवण मन के पारस्परिक संघर्ष और समझौते की कहानी है। उनके काव्य में मिथकों का प्रयोग तथा रोमाँचक कल्पनाशीलता के चित्र भरे पड़े हैं। कवि ने पहाड़ियों की तरह अडिग लगने वाली पुरानी मान्यताओं को स्थायी मानने से इन्कार किया तथा उन्हें आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया। कुँवरनारायण ने कविता को जीवन की आलोचना माना है। उन्होंने भारतीय पुराकथाओं पर से धार्मिक पर्दा हटाकर उन्हें विशुद्ध रूप से मानवीय महत्व देकर वर्तमान जीवन और जगत की समस्याओं से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी काव्य कृतियों में मनोहर कल्पनाशीलता, प्राकृतिक सौन्दर्य का विशद चित्रांकन तथा ग्राम्य परिवेश एवं प्रकृति के प्रति गहरा लगाव अभिव्यक्त हुआ है।कुँवरनारायण जी ने एक तरफ जहाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रमुखता दी है वही दूसरी तरफ उन्होंने भारतीय संस्कृति के उच्चतर मूल्यों एवं परम्पराओं को अपने काव्य में पर्याप्त महत्व दिया है।

भारत भूषण अग्रवाल :

भारत भूषण अग्रवाल ने अपने काव्य जीवन का प्रारम्भ रूमानी कवि के रूप में किया। जिसमें उन्होंने अपने तरूण मन की रूमानी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। 'तार सप्तक' के दिनों में वे साम्यवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक थे। 'मुक्तिमार्ग', 'ओ अप्रस्तुत मन' तथा 'अनुपस्थित लोग' प्रमुख काव्य–संग्रह हैं। उनकी मान्यता है कि कविता कवि के हाथ में मूल्यवान अस्त्र है। उनकी परवर्ती काव्यकृतियों में आधुनिक जीवन की वक्रताओं के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज में उपस्थित विद्रूपताओं और विघटनकारी तत्वों का बड़ा सशक्त चित्रण हुआ है। तारसप्तक के वक्तव्य में वे कहते हैं कि "यदि कविता

---

1. कुँवरनारायण –आत्मजयी, पृ० 39

का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध को स्वर देना और उसको शुभ बनाने में सहायता करना है, तो हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने के बजाय समाज की उस शोषण सत्ता से लड़ना होगा जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पनाविलासी बना छोड़ा है।"[1] भारत भूषण अग्रवाल की कविताओं में आम जनजीवन तथा प्रकृति परक कविताओं की भी पर्याप्त मात्रा पायी जाती है। 'याद' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"अब सब याद आता है।
× × × × ×
पर्वत की अंजुरी में अर्घ्य–सा लहराता
सरोवर–
× × × × ×
पुराने शिवालयों के अवशेष
× × × × ×
काजू के पेड़,
मोर
झरनों में भैसों–से बैठे वे ढूह,
फूल–माला की छावड़ियाँ,
देवार्चना में रत वृद्धा,
अबोध जन,
और पहाड़ी रात की आत्मीय निविड़ता।" [2]

भारत भूषण अग्रवाल की कविताओं में संवेदना का संप्रेषण प्रायः स्थितियों के माध्यम से होता है। उनकी कविताओं में अनेक स्थितियों के स्फुट चित्र मिलते हैं। कवि ने 'फूटा प्रभात..........' तथा उसमें आयी रमणीयता को कुछ इस प्रकार उद्घाटित किया है–

"फूटा प्रभात, फूटा विहान,
छूटे दिनकर के शर ज्यों छवि के वह्नि,–बाण
(केशर–फूलों के प्रखर बाण)
आलोकित जिन से धरा

---

1. सम्पादकः अज्ञेय– तारसप्तक, पृ० 84.
2. सम्पादकः अशोक बाजपेयी, भारतभूषण अग्रवाल–प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 52–53

प्रस्फुटित पुष्पों के प्रज्वलित दीप,
लौ–भरे सीप।'[1]

भारतभूषण अग्रवाल का कवि मन मुक्ति का आकाँक्षी है तभी तो वह प्रकृति के सारे उपादनों से अलग हटकर मुक्ति को प्रमुखता देता है, और मुक्ति को सौन्दर्य के अन्तिम प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है। कविता की पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"हँसी फूल में नहीं,
गन्ध बौर में नहीं,
गीत कंठ में नहीं,
हँसी, गन्ध, गीत–सब मुक्ति में है
मुक्ति ही सौन्दर्य का अन्तिम प्रमाण है!'[2]

भारतभूषण अग्रवाल की कविताओं में व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध और द्वन्द्व दोनों ही अभिव्यक्त हुए हैं। भारतभूषण अग्रवाल जी की कविता में यह एहसास बराबर मौजूद है कि सच्चाई और जिन्दगी कविता से कहीं बड़ी और व्यापक हैं उनकी कविता में रूमानी आवेग से लेकर मुक्त हास्य, विद्रूप से लेकर अनुराग और कोमलता की कई छवियाँ शामिल हैं। नयी कविता के अन्य कवियों की भाँति उनके काव्य में ग्राम्य परिवेश एवं प्रकृति के प्रति उतना गहरा अनुराग नहीं पाया जाता फिर भी काफी मात्रा में लोकान्मुखी एवं ग्राम्य परिवेश से सम्पृक्त कविताएँ उनकी कृतियों में पायी जाती हैं। अग्रवाल जी की कविता में मुख्यतः कामकाजी मध्यवर्ग की बिडम्बनाएँ, संवेदनशील व्यक्ति के ऊहापोह, शहराती जिन्दगी के रोजमर्रा के सुख–दुःख पूरी ईमानदारी और सशक्तता से अभिव्यक्त हुए है। भारत भूषण अग्रवाल लोकजीवन एवं प्रकृति को समग्रता में चित्रित करने के बजाय उसकी झलक भर प्रस्तुत कर देते हैं।

नयी कविता वास्तव में महानगरीय सभ्यता से जुडी हुई कविता है, फिर भी उसकी मूल चेतना में ग्राम्य परिवेश एवं प्रकृति समायी हुई है। जिस तत्परता

---

1. सम्पादकः अज्ञेय–तार सप्तक, पृ० 92.
2. सम्पादकः अशोक बाजपेयी, भारतभूषण अग्रवाल–प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 32

से उसमें ग्राम्य–जीवन एवं वहाँ की संस्कृति का अंकन हुआ है, वह निश्चय ही प्रशस्य है। नयी कविता में ग्राम्याँचलों की अपनी संस्कृति, रहन–सहन, रीति–रिवाज, प्राकृतिक छटा, भौगोलिक परिवेश, जनजीवन की चेतना, वर्गभावना, परम्परायें, अन्धविश्वास, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवस्थाओं का अंकन समग्र रूप में हुआ है। नयी कविता के कवियों ने ग्राम्य संस्कृति में पारिवारिक एवं मानवीय सम्बन्धों में व्याप्त गहरी रागात्मकता एवं आत्मीयता की भावना को जीवंत रूप में चित्रित किया है। आपसी भाईचारा एवं सहयोग भावना ग्राम्य संस्कृति की प्रमुख विशेषता है जिसको नये कवियों ने पूरी सशक्तता के साथ उभारा है। व्रत–उपवास, तीज–त्यौहार, मनौतियों, तथा देवी–देवताओं में गहरा विश्वास तथा प्राकृतिक शक्तियों के प्रति ग्राम्य जनों की पूजा भावना को नये कवियों ने पूरी आत्मीयता एवं सजीवता के साथ चित्रित किया है। ग्राम्य जीवन में व्याप्त अकाल, भुखमरी, बाढ़, अभाव तथा शोषण की पीड़ा को नयी कविता के कवियों ने व्यापक रूप में चित्रित किया है। ग्राम्य परिवेश से जुड़े प्राकृतिक प्रतीकों में विकसित सुमनों की गंध, लताएँ, चाँदनी, नदी, पर्वत, झील, वृक्ष, पंछी, धूप, आदि बहुलता में चित्रित हुए हैं। फाल्गुन की मादकता, उजियारे क्षितिज, कजरारे मेघ, पुरवैया की शीतलता, बन पाखियों की प्रभाव लोरी, बरगद की छाँह, बैसाख की आँधी, रिमझिम बरसता सावन, पनघटों पर पायलों की झंकार, धूप में पके खेत की डालों पर गाती गौरैया, फूलों पर अलसा कर सो रही तितलियाँ और न जाने कितने सम्मोहक बिम्ब नयी कविता के कवियों ने चित्रित किये है। इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि नयी कविता के कवियों ने ग्राम्य संस्कृति वहाँ के परिवेश एवं प्रकृति का बहुआयामी एवं समग्रता में चित्रण किया है।

□□□□□